॥ श्रीनाथजी ॥

श्री पुष्टिमार्गीय मुख्य धर्म

स्वरूप-सेवा

मायावादि करीन्द्रदर्प दलनेनास्येन्दु राजोद्गत
श्रीमद्भागवताख्य दुर्लभसुधा वर्षेण वेदोक्तिभिः
राधावल्लभ सेवया तदुचित प्रेम्णोपदेशैरपि
श्रीमद्वल्लभनामधेय सदृशो भावी न भूतोस्त्यपि

बसंत पञ्चमी सं० २०१८

सम्पादक—

श्री सत्यनारायण मिश्र एम. ए.

—: मंगलाचरण :—

नमामि हृदये शेषे लीला क्षीराब्धि शायिनम्
लक्ष्मी सहस्र लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् १
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा
षड्भिर्विराजते यो ऽसौ पञ्चधा हृदये मम २
चिन्ता सन्तान हन्तारो यत्पादाम्बुज रेणवः
स्वीयानां तान्निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहुः ३
यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत्
तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद्वल्लभ नन्दनम् ४
श्री गोवर्द्धननाथ पाद युगलं हैयंगवीन प्रियं
नित्यं श्रीमथुराधिपं सुखकरं श्री विट्ठलेशं मुदा
श्रीमद्द्वारवतीश गोकुल पती श्रीगोकुलेन्दुं विभुं
श्रीमन्मन्मथ मोहनं नटवरं श्रीबालकृष्णं भजे ५
श्रीमद्वल्लभ विट्ठलौ गिरिधरं गोविन्दरायाभिधं
श्रीमद्बालक कृष्ण गोकुलपती नाथं रघूणां तथा
एवं श्रीयदुनायकं [illegible] श्यामं च तद्वंशजान्
कालिन्दीं स्वगुरुं गिरिं गुरुविभुं स्वीयप्रभूंश्चस्मरेत्

॥ श्रीराधामाधवो विजयते ॥

(विषय प्रकरण क्रम)

१ प्रारम्भ प्रकरण

विषय संख्या | पृष्ठ संख्या

२ सम्मति प्रकरण

३ मीमांसा प्रकरण

—: ४ ग्रन्थ प्रकरण :—

पृष्ट सं०

प्रारम्भ [illegible]

इस प्रकरण में पांच विभिन्न शीर्षकों द्वारा ग्रन्थ
के उद्देश्य तथा जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य
[illegible] के मुखकमलविनिःसृत
श्री सुबोधिनी जी के वाक्य
वृन्दों द्वारा श्रीभगवन्नाम
के अधिकारियों का
अद्भुत वर्णन
है।

|| श्रीराधामाधवोजयति ||

दो-शब्द

"श्रीपुष्टिमार्गीयमुख्यधर्मस्वरूपसेवा" ग्रंथ को वैष्णव महानुभावों के कर कमलों में रख रहे हैं। इसके विषय में ऐसी भावना होना स्वाभाविक है कि सम्प्रदाय में अनेक ग्रंथ रत्नों के होते हुए भी इसकी क्या आवश्यकता हुई, इस पर संक्षिप्त प्रकाश डालना है।

कलकत्ते में कुछ दिनों से अष्टाक्षर महामंत्र के कीर्तन को लेकर एक विवाद खड़ा हो रहा है। इस विषय में कटु भाषा वद्ध पुस्तिका और नाम बिना नाम के पर्चे भी प्रकाशित हुए हैं। यह सब देखकर हमको बहुत क्षोभ हुआ, क्योंकि भगवन्नाम का कीर्तन कदापि विवाद ग्रस्त या विवाद का विषय नहीं है।

कितनी ही लिखा पढ़ी कर इस वातावरण को शान्त करने की चेष्टा की गई किन्तु इस मध्य में कुछ ऐसे व्यवहार हुए जो सम्प्रदाय की मर्यादा एवं वैष्णव धर्म के विरुद्ध तथा अनिष्टकारक समझे गये, और यह प्रस्तुत प्रकरण प्राचीन ग्रन्थों की खोजकर जनता के सामने रखना पड़ा।

इसकी यथार्थता के विषय में हमको श्री नाथद्वारा विद्या विभाग एवं श्रीमान् प्रथम पीठाधीश्वर श्रीद्वितीय

पीठाधीश्वर, तृतीयपीठाधीश्वर के अनुज श्री विट्ठलनाथ जी महाराज की भाभी जी मथुरास्थ श्री मदनमोहन चरण कमलानुरागिणी गो० श्री लावण्यवती भावी जी महाराज, श्री चतुर्थ पंचम पीठाधीश्वर के विद्यातीर्थ श्री गोकुलदास जी शास्त्री एवं श्रीमान् सप्तम पीठाधीश्वर तथा मुम्बईस्थ विद्वद्धौरेय विद्यानिधि गो० श्री दीक्षितजी महाराज अ. सौ. काशीस्थ श्रीकृष्ण प्रिया बेटी जी और भी अन्यान्य बालकों ने अपनी अपनी बहुमूल्य सम्मति परम अनुकम्पा कर प्रदान की है।

इस सम्प्रदाय के प्राण और देह श्री महाप्रभु जी तथा श्री गुसांई जी हैं। अतः उनके एवं तदनुगत गो० श्री गोकुलनाथ जी श्री हरिराय जी महाप्रभु श्री गोपेश्वर जी, दशादिगन्त विजयी श्री पुरुषोत्तमजी काशीस्थ श्री गिरिधर जी श्री लालू भट्ट जी प्रभृति महानुभावों के हिन्दी संस्कृत वाक्यों का यथावस्थित अनुशीलन किया है। इसमें अपनी हार्दिक एवं शास्त्रीय भावनाओं के देने वाले विद्वद्वर न्याय वैशेषिकाचार्य श्री सत्यनारायण जी मिश्र एम. ए. रिसर्च स्कालर इंडियन फिलोसफी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस, विद्यासिन्धु चतुर्वेदी श्री पुरुषोत्तम जी शास्त्री काशीराज्य रामनगर बनारस—पुष्टि सिद्धान्त विशारद श्री माधव शास्त्री बनारस तथा भावना भूषण चतुर्वेदी पं० श्री जगन्नाथ जी शास्त्री (मुनमुन जी) श्री मदनमोहन सेवी मुखिया श्री ध्रुव जी शास्त्री, (धूरिया) महा महोपदेशक पुष्कर निवासी श्रीधर शर्मा शास्त्री, गोकुल निवासी श्री पन्ना

लाल जी शास्त्री, चन्द्र सरोवर निवासी श्री हरिश्चन्द्र शास्त्री, जतीपुरा निवासी श्री भागवतरत्न पं० श्री गोकुलदास जी शास्त्री, वे. शा. ज्येष्ठाराम हरजीवन जोशी उमरेठ (अध्यापक श्री पुष्टि-मार्गीय संस्कृत पाठशाला पाटण गुजरात)

एवं श्री महाप्रभुगतप्राण मु. श्री ताराचन्द्रभाई मधुवन बैठक, प. भ. मुखिया जी चन्द्रभानु जी गुलालकुण्ड-गोवर्धन, भावुकवर श्री मायाराम जी दंडौतीधारवाले, सम्प्रदाय सिद्धान्त विशारद श्री जेठालाल गोवर्द्धन शाह एम. ए. अहमदाबाद, पुष्टिमर्मज्ञ श्री रणछोड़दास बृन्दावनदास पटवारी राजकोट, शुद्धाद्वैत रसिक श्री गोवर्धनदास त्रिविक्रमदास मथुरा, भावुकरत्न जवाहरलाल परीख उदयपुर, लोक विख्यात श्री जयदयालु जी गोइंदका बाकुडा, भक्तपुङ्गव श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार गोरखपुर, साहित्य भूषण बाबू प्रभुदयाल जी मीतल (मथुरा) इनकी तथा कई अन्यान्य सम्मतियाँ जो प्राप्त हुई हैं कई एक महानुभावों के ग्रन्थों से संग्रहीत हैं हम सभी के अनुग्रह भाजन एवं कृतज्ञ हैं।

इस ग्रन्थ में जो भी साहित्य है सभी साम्प्रदायिक है किसी के मत का खण्डन या आक्षेप नहीं, किन्तु वैष्णव जनता को वास्तविकता का परिचय कराया है। इसमें जो भी अच्छा है श्री महाप्रभु जी का है और त्रुटियाँ हमारी हैं, सभी अनुग्राहकों को अनेक धन्यवाद

हैं। अन्त में भगवदीय वैष्णवों के प्रति आग्रह है कि वे आद्यन्त ग्रन्थ का अवलोकन कर श्रीमदाचार्य जी महाप्रभु की यथार्थ पुरातन प्रणाली का अनुसरण करेंगे और अष्टाक्षर महामन्त्र का स्मरण करते हुए प्रभु के श्री कृष्णादिनामों का यथेष्ट कीर्तन करेंगे।

—आचार्य यमुनावल्लभ गोस्वामी शास्त्री
श्रीराधामाधव जी की हवेली
श्री जयदेवपीठ—श्री वृन्दावनधाम

* श्रीनाथोविजयते *

प्राक्कथन

यद्यपि भगवती श्रुति के उपदेशों में एकता है, फिर भी जीव को अपने वैमत्य के कारण श्रुति की आज्ञाओं में विभिन्नता प्रतीत होती है। विभिन्न आचार्यों ने श्रुति में एक वाक्यता लाने का स्तुत्य प्रयास किया है। और अभिधात्मकही न रह कर लक्षणा को भी स्वीकार किया। फिर भी साधारण जीवों की विप्रतिपत्ति तो बनी ही रही। कारण स्पष्ट था। बुद्धि और हृदय दोनों की शुद्धता अपेक्षित थी।

श्री आचार्य जी महाप्रभु ने प्रकट होकर शुद्धाद्वैत दर्शन के द्वारा मानवबुद्धि को परिष्कृत किया। साथ ही पुष्टि-भक्ति के द्वारा हृदय शुद्धि का भी अद्भुत प्रयत्न किया। इन महान् श्री आचार्य जी ने सम्पूर्ण वेदों का अभिधा शक्ति के द्वारा ही अक्षरशः प्रामाण्य स्वीकृत किया। श्रीकृष्ण की पूर्णावतार दशा को इन्होंने परब्रह्म के विरुद्ध धर्मा-श्रयत्व का उदाहरण माना। श्रीकृष्ण बाल्य होकर भी रसिक शिरोमणि हैं। स्ववश होते भी भक्तवश हैं। अभीत हैं

तथापि माता के निकट भीत हैं। चतुर होते भी मुग्ध हैं। आत्माराम हैं फिर भी रमण करते हैं। पूर्ण काम भी कामार्त हैं। अदीन हैं परंतु भाषण हीन जैसा करते हैं। स्वतंत्र भी पराधीन हैं। अवतार दशा में प्रापञ्चिक धर्म को स्वीकार करते हैं। कितने रूप होते भी अच्युत हैं।

इस प्रकार समग्र वेद और शास्त्रों के मतों को एक वाक्य करने का सम्पूर्ण श्रेय श्रीमद्वल्लभाचार्य जी को ही प्राप्त हुआ। यही कारण है कि सूर जैसी महान् आत्माओं को भी इस सिद्धांत का अनुयायी होना पड़ा। परन्तु शास्त्रों के अध्ययन न करने के कारण जब इन तपः पूत श्रीमद् आचार्य चरणों की आज्ञाओं का अनुचित अर्थ लगाया जाता है, तब हृदय क्षुब्ध हो जाता है।

भक्ति का महत्त्व सभी संतों एवं आचार्यों ने एकमत से स्वीकार किया है। इसी प्रकार भगवान् के गुणों का तथा लीलाओं के कीर्त्तन का महत्व श्रीमद् भागवत शास्त्र में बड़े ही मार्मिक शब्दों में वर्णित है।

भक्ति शास्त्र के समस्त ग्रंथ भगवद् यशःकीर्त्तन में ही व्यस्त हैं। अधिक क्या कहें अष्ट-सखाओं का तो यह कीर्त्तन ही सर्वस्व है। पुष्टिमार्ग की सेवा में भी आचार्य श्री ने रागभोग शृङ्गार यह तीन प्रमुख अङ्ग स्वीकार किये हैं। राग से कीर्त्तन का भी ग्रहण है।

मानव-जीवन के तीन प्रधान बंधन हैं, राग, भोग और शृङ्गार। इन्हीं को आचार्य जी ने भगवान् की सेवा में लगाकर भगवद्रूप कर दिया है। भगवान् का कीर्त्तन-राग से करने पर मन की एकग्रता होती है। इसलिये यह राग निरोध का साधन होता है। इससे जो कुछ सुख मिलता है वह अन्य साधनों से प्राप्त नहीं हो सकता है।

पुष्टिमार्गीय सेवा की कीर्त्तन प्रणाली में राग का प्राधान्य है। भक्ति-शास्त्रों में कीर्त्तन में होने वाले कुछ अपराधों का भी वर्णन है, इन अपराधों की संख्या दश है। जिनमें अश्रद्धालु को कीर्त्तन सुनाने का भी निषेध है। इस प्रकार पुष्टिमार्ग में जो कीर्त्तन का स्थान है वह अन्यत्र देखने को भी नहीं मिलेगा।

श्रीमद् आचार्य जी द्वारा पोषित इस मार्ग की श्रुति मूलकता होने पर भी अन्य मार्गों से इसकी विलक्षता है। इसीलिए आचार्य जी "पृथक् शरण मार्गोपदेष्टा" कहे जाते हैं।

आगम ग्रंथों में जहाँ मंत्रों का उपदेश मिलता है, उन्हें अत्यन्त गोप्य माना गया है। आगम वह शास्त्र है जिसके द्वारा भोग और मोक्ष के उपाय बुद्धि में आते हैं। निगम (वेद) कर्म उपासना और ज्ञान के स्वरूप को बतलाता है। तथा आगम इनके साधन भूत उपायों को सिखलाता

है। आगम शास्त्र एक नितांत रहस्यपूर्ण शास्त्र माना जाता है। इसमें मंत्रों का रहस्य गुरु के द्वारा दीक्षा ग्रहण के समय शिष्य को बतलाया जाता है, और गुरु शिष्य के लिये मंत्र द्वारा ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश देता है।

अतः इसी कारण वैखानस आगम जो अत्यन्त प्राचीन है। उसमें अष्टाक्षर पञ्चाक्षर मंत्रों को गुरुद्वारा ग्रहण करके अत्यन्त गुप्त रखने का आग्रह किया गया है। गड़बड़ी तो वहाँ से शुरू होती है जब हम श्रीमद् आचार्य जी द्वारा उपदिष्ट भक्ति और शरणागति के अर्थ का अनर्थ करने लगते हैं। पुष्टि संप्रदाय की भक्ति उपाय-भूता न होकर फल रूपिणी है।

भक्ति के दो भेद हैं गौणी तथा परा। परा भक्ति में भगवद् विग्रह की उपासना मूर्ति के रूप में न करके साक्षात् स्वरूप मान कर सेवा की जाती है। साधन दशा की भक्ति गौणी कहलाती है—और साधन भक्ति के ही श्रवण कीर्त्तन आदि नव अङ्ग हैं, साध्य भक्ति तो स्वयं फल रूपिणी है और इसके अधिकारी नहीं हैं, जिन्हें श्रीमद् आचार्य जी ने अपने प्रमेयबल से अङ्गीकार करके पुष्टि संप्रदाय में दीक्षित किया है। इस प्रकार कीर्त्तन, साधन-भक्ति का एक अङ्ग हैं। और श्रीमद् आचार्य जी द्वारा उपदिष्ट पुष्टि-भक्ति का महत्व इससे नितांत विलक्षण है।

इसी प्रकार "सर्व कर्माण्यपि सदा" से "सर्व धर्मान् परित्यज्य" पर्यन्त गीता में द्वैविध्य शरण का निरूपण हुआ

है। पहिला शरण, कर्म-ज्ञान के अंग वाला साधन रूप शरण है। दूसरा शरण अनन्य भाव से एक मात्र श्रीकृष्ण के शरण में जाने का ही फल-रूपी शरण है, श्रीमद् आचार्य जी ने इस फलात्मक शरण की भावना को प्राधान्य दिया है। इन्हीं कारणों से वैष्णवों को आचार्यों के द्वारा सम्प्रदाय के सूक्ष्म सिद्धांतों की जानकारी करनी चाहिए। अन्यथा बड़ा अनर्थ होने का भय है।

क्षोभ तो तब होता हैं जब भोले-भाले वैष्णव फलरूपी भक्ति को जिस पर बार-बार श्रीमद् आचार्य जी ने जोर दिया है, छोड़कर साधन रूपी शरणागति को ही श्रीमद् आचार्योपदिष्ट भक्ति-मान बैठते हैं। अपने संप्रदाय में माधुर्य भक्ति का जो स्थान है वह वर्णनातीत है।

आत्मा-रूपी गोपी ही वास्तव में भक्त हैं, और आत्मा-राम से इनका नित्य रमण पुष्टि संप्रदाय में भक्तों को अभीष्ट है। इसी कारण जिस प्रकार कन्या अपने अंगों को केवल पति के सामने प्रकट करती है उसी प्रकार पुष्टि भक्तों को अपने भावों को अत्यन्त गोप्य रखना चाहिये। और केवल प्रभु के सामने तथा उनके अनन्य भक्तों के सामने ही प्रकट करना चाहिए। इस पुस्तक में सेवा संबंधी सभी भावों को संक्षिप्त में रखने का प्रयत्न किया गया है। पं० यमुनावल्लभ गोस्वामी शास्त्री जी के प्रयास से यह ग्रंथ तैयार हुआ हैं, इसके लिये पं० जी

को मैं अपनी शुभ कामनाएँ अर्पित करता हूँ। समय २ पर मुझसे जो कुछ सहयोग लिया है उसमें मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ।

लेखक—

सत्यनारायण मिश्र, एम. ए,

न्याय वैशेषक शास्त्राचार्य

रिसर्च स्कॉलर इण्डियन फिलासफी,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस

श्री मद्वल्लभाचार्य-चरण

★

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिंचनगोचरम् ॥१ स्कं० २६ श्लो०

सुबोधिनी

एवमद्भुतलीलामुपपाद्य दुष्टदुर्ज्ञेयत्वमाह चतुर्भिः

जन्मैश्वर्येति—भगवतो हिं नव प्रकारा धर्माज्ञेयाः नवविध भक्तिहेतवः स्वरूपगुणादिप्रकारेणाभिन्नाः। तत्र स्वरूपे ज्ञाते श्रवणंभवति गुणेषु ज्ञातेषु कीर्त्तनं भवति लीलायां ज्ञातायां स्मरणम् एवमेकःखण्डः । द्वितीयखण्डे समीप गमन पूजन वन्दन दास्यानि तृतीये सख्यात्मनिवेदने तत्र दुष्टदुर्ज्ञेयत्वादीनां तत्र तत्र कारणतामुपपादयिष्यामः । तत्र प्रथमं तावत् दुष्ट दुर्ज्ञेयत्वं निरूप्यते तत्र जन्म सत्कुले ऐश्वर्य राज्यादौ श्रीपतेर्नज्ञायते तावत् दुष्टानां वाधककायवाङ्मनोव्यापाराणां दर्शनात् भगवत्समीपं न गच्छेत् ज्ञाते तु पुनः अंधोन पश्यतीति चक्षुष्मतापि न द्रष्टव्यमितिवत् । अस्मत् बुद्धीनां वाधप्रतीतिरिति द्वितीये खण्डे प्रवर्तते अतः पद सेवनार्थं दुष्ट दुर्ज्ञेयत्वं निरूप्यते । तत्र सत्कुले ऐश्वर्यं राज्यादौ श्रुतं शास्त्रादौ श्रीःसम्पद् एताभिरेधमानो मदोयस्य अयमर्थः । यथा तंडुलादेस्तुन्दन द्वारा पितृदेव मनुष्यादीनां तृप्तिजनकत्वेनामृतत्वेपि मदापेक्षिणां

स्वमलत्वेन पर्यवसानात् मादकत्वं तथा सति सत्कुलोत्पन्न इति न तस्य संग्रहः कर्तव्यः । एवमुत्तरत्रापि इममेवान्तं "विद्यामदो धनमद" इति वाक्यंप्रवृत्तांपुमानिति स्वातंत्र्येण गुरुभिरनियम्य इत्युक्तम् अतः एव त्वामभिधातुं नार्हति । यथा पूर्वं ब्राह्मणोपि जात्यन्तरमापन्नोमदिरामत्तो वेदं पठितुं नार्हति पठनेप्युन्मत्त प्रलपितमेव तन्न श्रोतव्यम् । यद्यपि भक्तौ सर्वे-धिकारिण स्तथापि कृत्रिम मदिरादि संबंधे वेदाधिकारा भाववत्— "मादकस्य न भगवच्छब्दोच्चारणाधिकारः अतस्तदाचारान्न काचिद्व्यवस्था ननु-जन्म कर्मविदातानामिति वेदाधिकारोक्ते स्तादृशस्य वेदानधिकारो भवतु नाम भगवतः पुनः सर्वा-त्मकत्वात् "चक्रांकितस्य नामनि सदा-सर्वत्र कीर्तयेत् "इति स्मृतेश्च पतितः इतिवाक्याच्च महापातकिनोपि प्रायश्चित्त-त्वेनोक्तत्वाच्च कथं मत्तस्यनाधिकार इति चेत्तत्राह । अकिञ्चन-गोचरमिति-अकिंचनाः पूर्वोक्तरहिताः तेषां गोचरोगम्य अयमर्थः न तादृशस्याधिकार इति न स्वरूपतोऽधिकारो निवार्यते किंतु फलतः भगवानेव हृदये नायाति । भगवद्गुणाश्च मुखे आगच्छतो व्यवहारत्वेना गच्छति शौचे गङ्गाजलवत् । अकिंचन गोचर स्वभावत्वात् अद्यापि लोके सर्वे संभाष्यंते न मत्ताः । अतस्तेषु कदाचिदपि भगवत्सांनिध्याभावादनधिकारः ।

इत्युक्तम् (२६)

पुष्टि मार्गे मुख्य धर्म कृष्ण सेवा ——— ।
श्री वल्लभाचार्य पादान् प्रणमामि पुनः पुनः ॥

जयन्ति श्री मदाचार्य चरणाम्बुजरेणवः ।
यत् कृपा कणमात्रेण मूकोपि मुखरी कृतः ॥

श्री भगवन्नाम उच्चारण के अधिकारीजन

श्रीमद्भागवत प्रथम स्कंध भगवल्लीला के श्रवण में जिनका अधिकार है उनका वर्णन करता हूँ जब प्रश्न होता है कि लीला के श्रवण के अधिकारी कौन हैं तब श्री व्यास जी कुन्ती स्तुति के २६ में श्लोक में कहते हैं कि:—

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ।
नैवार्हत्यभिधातुं वैत्वामकिंचन गोचरम् ॥२६॥१ स्कं० श्री० भा०

सत्कुलजन्म ऐश्वर्य शास्त्राभ्यास और सम्पत्ति से जीव मदोन्मत्त बन जाता है वह आपके नाम को लेने का अधिकारी नहीं है क्योंकि आप तो अकिंचनों के विषय हो। वह अकिंचनता उन मत्तों में न होने के कारण वे आपका नाम नहीं ले सकते हैं। और जिनके आपके सिवाय दूसरा कोई नहीं उन अकिंचनों की श्रवणादि-भक्ति के विषय रूप आप बन जाते हैं। यह श्री कुन्ती जी श्रीकृष्ण से कहती हैं।

इसी श्लोक की श्री सुबोधिनी टीका में श्रीमद्वल्लभाचार्य-लिखते हैं। "भगवान् के नव प्रकार के धर्म जानने चाहिए वे ही गुण नव प्रकार की भक्ति के कारण रूप हैं। वे धर्म स्वरूप गुण लीलादि से अभिन्न हैं जैसे स्वरूप जानने से श्रवण, और गुणों को जानने से कीर्त्तन, तथा लीला के जानने से स्मरण बनता है। यह खण्ड हुआ।

दूसरे खण्ड में निकट जाने से पादसेवन, पूजन, वंदन, दास्य, यह चार भक्ति सिद्ध होती हैं। तृतीय खण्ड में सख्य और आत्म-निवेदन दो भक्ति होती है, अब इस प्रकार भक्ति के ६ भेदों का पृथग्भाग हुआ। किंतु यह सब दुष्टों को सर्वथा दुर्ज्ञेय हैं इसका वर्णन करते हैं। जहाँ तक यह न जाना जाय वहाँ तक दुष्टजनों के बाधक शरीर वाणी और मन के व्यापार का दर्शन होने से वे भगवत् के समीप जा ही नहीं सकते हैं। दुष्ट दुर्ज्ञेयता जाने पीछे जो समीप में न जाय तो जैसे अंधा नहीं देखता तो आँखवाला भी नहीं देखे—इस न्याय से अपनी बुद्धि का दोष समझना। इससे फिर दूसरे खण्ड में प्रवृत्ति को इससे पाद सेवन भक्ति में दुष्ट दुर्ज्ञेयता कहते हैं।

जैसे सत्कुल में जन्म राज्यवैभवादि का ऐश्वर्य-शास्त्रादि से उत्पन्न श्रवण ज्ञान और अखण्ड सम्पत्ति। यह चार प्रकार का मद जिसे हो वह भगवान् के नाम लेने में साधक नहीं है।

यहाँ समझाया है जैसे—सिद्ध हुए चावल देवता को निवेदन करके मनुष्य देव पितृ प्रभृति के उपयोग में लेने से सबकी तृप्ति करते हैं, और अमृत रूप होते हैं। किंतु उन्हीं धान्यों का सहयोग सुरा (मदिरा) बनाने में करे तो उसी अन्न के मल में मादक पदार्थ बनते हैं। इस से मादक पदार्थ भी चण्डू बन जाता है जिसे पीने वालों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और धर्मच्युत हो जाता है।

तैसे ही अहंकारी जीव सत्कुल में पैदा हुआ भी उस कुल का मलरूप होता है। जैसे सुरामद उन्माद कराता है वैसे ही कुल और जाति मद कराता है वैसा समुदाय श्री भगवत् नाम लेने लायक नहीं रहता है अगर नाम ले भी तो मद प्रलपित सदृश होने से उसके मुख से वह नाम सुनने लायक नहीं है।

जैसे ब्राह्मण सुरापान करके मदान्ध हो जावे और वेद का उच्चारण भी करे तो भी उसके वेद वाक्य ब्राह्मण मुख निर्गत होते हुए भी सुनने लायक नहीं हैं। तैसे कुल मद से उन्मत्त के मुख से भगवन्नाम सुनने योग्य नहीं है। यह तो एक कुल की बात हुई इससे इतर ऐश्वर्य सम्पत्ति और शास्त्र श्रवण आदि से जो जीव मत्त हो वह भी भगवन्नाम उच्चारण के लायक नहीं रहता है जैसे—

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोभिजनो मदः।
एते मद मदान्धाना त एवतु सतां दमा ॥१॥

यह श्लोक संसार में विख्यात है इससे ऊपर गिनाये हुए जन्म ऐश्वर्य। शास्त्र श्रवण और लक्ष्मी मद से युक्तों में सत्पुरुष भी होते हैं वे भगवद्भजन योग्य हैं किंतु जिनको इन मदों का उन्माद है वे जीव भगवन्नाम लेने में अयोग्य है।

जैसे भक्ति में सबका अधिकार है किंतु मदिरादि सेवन से वह नष्ट होजाता है और भक्ति का महत्त्व कम पड़ जाता है उसके मुख से भगवन्नाम निकले तो उन्मत्त प्रलपित कह-

लाता है जिसे सुनने से गुण तो क्या बल्कि दोष होता है। और उसके आचार से कोई व्यवस्थित कार्य नहीं होता है।

शंका—

"जन्मकर्मावदातानाम्" इत्यादि वाक्यों से उत्तम कुल के जन्म वाले की विशेषता बतलाई है। और जन्म होके भी उसे वेद का अधिकार बना रहता है। क्योंकि भगवान तो सर्वात्मा हैं उनके नाम का अधिकार तो सभी को सर्वदा होना चाहिये क्योंकि:—

"चक्राङ्कितस्य नामानि सदा सर्वत्र कीर्तयेत्"
(स्मृतिः)

और "पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुप्तो वा विवशो गृणन्।
हरये नमः" इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥१॥

इत्यादि वाक्यों से सभी अवस्थाओं में भगवान् भजनीय है। महापातकी भी भगवन्नाम से पवित्र होता है, तब फिर मद वाले को क्यों न फल मिले।

उत्तर—

वह भगवान् जन्मैश्वर्यादि धर्म रहित अकिंचन को मिलता है। इस कारण जन्मैश्वर्यादि मद वाले जीव का स्वरूप से अधिकार बना रहता है किन्तु उसको भक्ति का फल नहीं मिलता है। "फलतोऽनधिकारः" इस कारण भगवान् हृदय में नही आते हैं, और भगवान् के गुण मुख में नहीं आते

हैं। और जो आते भी हैं तो शौचार्थ गङ्गाजल की तरह व्यवहार मात्र में आते हैं। भगवान् तो अकिंचन को प्राप्त हैं इस कारण—जैसे आज भी कोई मदोन्मत्त के साथ व्यवहार नहीं करता है इसी प्रकार *अधिकार हीनता की* उसका भगवन्नामोच्चारण में अधिकार नहीं है। "श्री सुबोधिनी जी"

श्रीमदाचार्य-चरण चतुर्विध मद वालों को भगवन्नाम लेने का अधिकार नहीं है इसे विस्तार पूर्वक सुबोधिनी में लिख चुके हैं इसका कारण यह है कि अगर भगवत्कृपा हो तो यह चारों मद कभी हो नहीं सकते किन्तु इसके विपरीत "भगवत्कृपा विमुख त्याज्य है।" इसी से दृष्टांत में सुराका जो ग्रहण किया है उस लक्ष से ऊँचे से ऊँचा पतित हो जाता है। अतः ऐसे चार प्रकार के जन्म ऐश्वर्य श्रुत श्री मदों से पूर्ण जीवों से दूर रहना चाहिये। आचार्य-चरण का यह ही तात्पर्य है।

———

* श्रीनाथजी *

तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं ममः
वदद्भिरेवं सततं स्थेयमित्येव मे मतिः ॥६॥

"नवरत्न"

यद्यपि जितनी कही है, उतनी हम कही, सो सब जीवन ने आपुन सों तो चस्का लागत है तासों यासों यासों एकहु भक्ति सिद्ध न होइगी। पर यह जीव कों सर्वात्मना श्री ठाकुर जी सदा ही सिद्धि करेंगे, यह जाननो, ताते याते तो कछुहु सिद्ध न होय पर या जीव कूं यह विचारनो जो मैं करत हूँ तामें प्रति बन्ध होत है ताते मोकों एक श्री ठाकुर जी की शरण है। या भाँति दीनता सों निरन्तर बिचारे, तो श्री ठाकुर जी याकोहु सिद्धि करेंगे। यह जाननो और श्रीकृष्णः शरणं ममः यह कहनो सो काहे ते जो जा क्षण न कहे ताही क्षण, काम, क्रोधादिक जो आसुर धर्म हैं ते प्रविष्ट होंय, या कहि के श्री आचार्य जी अपने सेवकन कूं शिक्षा दिये हैं, सो निरन्तर तुम श्री ठाकुर जी की सेवा करो और निवेदन को स्मरण करो। श्री कृष्णः शरणं ममः यह कहते रहनो। यह शिक्षा दीये।

षोडस ग्रन्थ की टीका श्री गुसाईं जी कृत

हस्त लिखित प्राचीन प्रति "नाथद्वारा"

❀ सम्मति-प्रकरण ❀

इस प्रकरण में पुष्टि सम्प्रदाय के अध्यक्ष आचार्य एवं
गण्यमान्य-विद्वान् वैष्णवों की सम्मति से यह
स्पष्ट हुआ है कि अष्टाक्षर महामंत्र का
कीर्तन करना पुष्टि मार्ग के सर्वथा
विरुद्ध है।

❀ श्रीहरिः ❀

॥ श्री गोवर्द्धनधरो विजयते ॥

❀❀
❀

"पुष्टि मार्गीय मुख्य धर्म स्वरूप सेवा" नामक पुस्तक मैंने देखी इसमें प्रभु-सेवा की महत्ता तथा अष्टाक्षर मंत्र के स्मरण का सप्रमाण बड़ा ही मार्मिक प्रतिपादन है। इस पुस्तक में एक यह संकेत भी मिलता है कि श्रीगुरू मुख प्राप्त अष्टाक्षर मंत्र स्मरणीय एवं जप ही करने योग्य है। उक्त मंत्र को ध्वनिवर्धक यंत्र द्वारा उच्च स्वर से कीर्त्तन करना अथवा हारमोनियम तबला आदि वाद्यों द्वारा, जिसमें कि वर्णोच्चारण स्वाभाविक ही विघटित हो जाता है। अथवा रेडीयो आदि में भी प्रसारित करना स्वाचार विरुद्ध है। इस विचार में भी अष्टाक्षर मंत्र के उच्चस्वर से उच्चारण न करने के पक्ष की पुष्टि निम्न प्रकार है॥

इसे मंत्र मानते हैं। तो मत्रि धातु तो गुप्त बोलने अर्थ में योग रूढ़ है॥ तथा 'मननात् त्रायते यस्मात् तन् मंत्रःपरिकीर्तितः"॥ इससे भी मंत्र शब्द मननार्थक ही माना गया है। श्रीकृष्णः शरणं मम, इसके मंत्र होने से ही इसके साथ जपेत्, स्मरेत् ये ही शब्द अधिक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इसीलिये गो० श्रीगोकुलनाथ जी महाराज श्री ने भी इसे गोप्य रखने का ही आदेश दिया है।

• तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम ॥
वदद्भिरेवं सततं स्थेयमित्येव मे मतिः" ॥

इसमें भी "वदद्भिः पद में वद का अर्थ कीर्त्तन न होकर सु स्पष्टोच्चारण मात्र ही मूल अर्थ है ॥ कीर्त्तन शब्द का अर्थ भी कोष के अनुसार कथन (कहना मात्र ही) होता है और इसी प्रकार जप धातु भी व्यक्तं बोलने के अर्थ में भी है। इसलिये "यदुच्चनीच स्वरितैः स्पष्ट शब्द वदक्षरैः" ॥ मंत्र मुच्चारये द्व्यक्तं जप यज्ञः सवाचिकः" ॥ (जन्मनां कीर्त्तनं मम) कीर्त्तन का भी कथन अर्थ ही है; ऐसा मानने पर वदद्भिः के साथ वाचिक जप एवं कीर्त्तन की भी एकार्थता प्रतीत होती है। विचार पूर्वक कीर्त्तन भी जपार्थक हो जाता है, और जपके कुछ नियम भी कीर्त्तन में लागू पड़ते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे अभिनेता को अभिनय करते करते कदाचित् रसोद्बोध हो जाता है उसी प्रकार जप के धर्म जब कुछ कीर्तन में भी सम्मिलित होते हैं तो कीर्तन में भी जपानन्द का समन्वय हो उठता है (जप के नियम) जो शान्त वातावरण, केवल अनन्य भगवदीयों का समाज, मनस्थिरतादि अनेक ऐसी परिस्थितियों के प्राप्त होने पर ही जैसे जपानन्द प्राप्त होती है वैसे ही कीर्तन भी ॥

वाचिक जप को भी मानें तो भी "वाचिके प्युच्चकैर्निषेध माह शङ्खः नोच्चैर्जप्यं बुधः कुर्यात्" वाचिक जप का भी उच्च स्वर से बोलना निषिद्ध है। कीर्तन और वाचिक जप दोनों ही

एकार्थक होने से कीर्तन का भी उच्चस्वर से न बोल कर उच्चारण मात्र ही अर्थ होता है। अर्थात् जप मन्त्र का होता है और कीर्तन तद्गुणों का, कीर्तन की परिपाटी में समाज में पद वाणी, आदि गाकर भगवद्लीला चिंतन किया जाता है और जप में श्रीगुरू को सेवा से प्रसन्न कर उनके मुख द्वारा अपने दक्षिण कर्ण पुट में मन्त्राक्षर पीयूष पान करने के उपरान्त ही वाचिक तथा मानसिक जप करने की शिष्टाचार शिक्षित प्रणाली आज तक चली आती है। कलियुग में शिष्टाचार को मुख्य माना गया है "साधूनां समयश्चापि प्रमाणं वेद वद्भवेत्; कलौतस्य विशेषतः प्रामाण्य बोधनाच्च इस उपदेश शंका निराशवाद के लेख से शिष्टाचार कलियुग में तो विशेषरूप से वेदवत् प्रमाण माना गया है। अष्टाक्षर मन्त्र को श्री आचार्य चरणों से अद्यावधि कहीं भी किसी गो० बालक बहू बेटी जी ने गायन द्वारा प्रचारित नहीं किया, इसलिए शिष्टाचार विरुद्ध भी है।

सर्वथा तद्गुणालापं नामोच्चारणमेवच।
सभायामपि कुर्वीत निर्भयो निस्पृहस्तथा।

इस उक्त प्रमाण से जो नाम शब्द से नाम मंत्र अर्थ करके अष्टाक्षर को भी सभा में बुलवाने का आग्रह करते हैं उसमें से भी केवल श्री कृष्ण यह त्र्यक्षर नाम ही बुलवाया जा सकता है। गो० श्री पुरुषोत्तम जी महाराज ने भी वैकल्पिक पक्ष बतलाते हुए आज्ञा की है, अथवा—"अस्मिन् वाक्ये श्री कृष्ण इति नामैव

मंत्र:, पद्म पुराण में भी कहा है कि "कृष्णेति वैष्णवं मन्त्रम्"। "कृष्णेति द्वयक्षरो मंत्र:"। गृहाण मम मन्त्रञ्च कृष्ण इत्यक्षर द्वयम्"। इत्यादि। इन वाक्यों द्वारा श्री कृष्ण पद का कीर्तन कर सकते हैं। एतदर्थ अष्टाक्षर मंत्र का अन्य सम्बंध गन्ध कुवासित नगर नगर की सड़कों तथा गलीयों में सिनेमा विज्ञापन के तुल्य ध्वनिवर्द्धक यंत्र द्वारा मंत्रोच्चारण साम्प्रदायिक परम्परा के तथा गो० श्री गोकुलनाथ जी प्रभृति आचार्य वाक्यों के विरुद्ध ही है। मन्त्र तो दीक्षा या उपदेश द्वारा ही प्राप्त होता है, "अदीक्षितस्य वामोरू कृतं सर्वं निरर्थकम्" यह तो सत्य है कि बिना दीक्षा या उपदेश प्राप्त हुए भजन स्मरण कीर्तन आदि सब व्यर्थ ही है, यथा, "भस्मनि बह्निविहीने न प्रक्षिप्तं हविर्ज्वलति" यद्यपि "यन्नाम धेय श्रवणानु कीर्तनात्," की श्री सुबोधिनी जी के अनुसार भगवन्नाम रूप दीक्षोपदेश सब को सुलभ है, कहा भी है, "भगवन्नाम्ना दीक्षया प्राप्तेन वा सर्वान्दोषान्नौत्पत्तिकान् परिहृत्य तान्येव भूतानि उत्कृष्ट संस्कारेण संस्कृतानि क्रियन्ते"। तात्पर्य यह है कि नीचदेह अधर्म सँस्कृत पंच महाभूतों से बनता है और धर्म सँस्कृत पंच महाभूतों से ब्राह्मण शरीर का निर्माण होता है। केवल भगवन्नाम द्वारा अथवा दीक्षा प्राप्त भगन्नाम द्वारा पूर्वोक्त उभय शरीर औत्पत्तिक दोषों से निर्मुक्त होकर उत्कृष्ट में संस्कारों से संस्कृत अर्थात् श्रेष्ठ गुण सम्पन्न होजाते हैं। इसी वाक्य को प्रमाण मानकर श्री गो० श्री पुरुषोत्ताम जी महाराज ने भी भगवन्नाम स्मरण करने का ("सर्वेषामधिकार:") सबको अधिकार कहा है।

यह भी माना है कि अष्टाक्षर का उपदेश लेने का प्रत्येक प्राणी अधिकारी है परन्तु जिस प्रकार गुरु—उपदेश की विधि है उसी प्रकार अन्यथा नहीं ॥ "अव्यवस्थित" मानने से तो मार्ग की हानि ही सम्भव है कारण गुरु–शिष्य–परम्परा के ही विलोप हो जाने का भय भी उपस्थित होता है। उपदेश प्राप्त सभी वर्ग के जीवों के सम्मुख इस मंत्र का वाचिक जप करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं आती; आपत्ति तो मुख्यतया इस बात पर है कि बहिर्मुख एवं हिंसक वृत्ति वाले जीवों के कोलाहल में "माइक" द्वारा तार स्वर से विकृत ध्वनि में अष्टाक्षर मंत्र का गान अन्तरंग में न गाकर अन्याश्रयी निन्दक बहिरंग व्यक्तियों को श्रवण कराते हुए गाया जावै। यह कार्य तो निश्चित ही नीरस है।

"जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिः की श्री सुबोधिनीजी में श्री आचार्य चरणों ने सत्कुलमद, ऐश्वर्यमद, विद्यामद, लक्ष्मीमद से युक्त प्राणियें को नामोच्चारण करने तथा कराने में सर्वथा अनधिकारी बताया है। अर्थात् ऐसे प्राणियों को अधिकारी नही माना है। अतः अष्टाक्षर मंत्र का जप ही करना चाहिये कीर्त्तन नहीं। सब दैहिक कार्यों के करते हुए भी अपनी बाणी से सुस्पष्ट-निरंतर स्वमार्गीय शिक्षार्थ अष्टाक्षर का उच्चारण वाचिक जपकी भांति किया जा सकता है। द्वितीय विचारणीय विषय उक्त पुस्तक में, पुष्टि-स्वरूप में भावित स्वरूप की सर्वथा स्थिति माननी चाहिए, यह भी है। जैसे कि श्री महाप्रभू जी आदि के श्री चित्र जी में भावित स्वरूप की सर्वदा स्थिति रहती है या नहीं।

इस विषय में यही निवेदन है कि पुष्ट हुए श्री चित्र जी में भावित स्वरूप की स्थिति तो सर्वदा ही विद्यमान है। जैसा कि, "बहूनि सन्ति नामानि" की श्री सुबोधिनी जी से सूचित है "।

सर्वदा भगवति चकरान्नाम रूपयोः क्रीयायाश्च नित्यत्वं प्रतिपादयन्ति" सन्तीति तेन भगवान् गोवर्धन मुद्धरन् सर्वदा वर्तत इति"। गोवर्धनोद्धरण धीरः क्रियानामभ्यां सहितो गोवर्धनोद्धरण रूपः सर्वदा वर्तते" अद्यापि प्रतिकृत्यनुभवो भक्तानाम्" उपर्युक्त श्री सुबोधिनी जी में उक्त श्रीकृष्ण के लिए ही कहा गया है। तथापि "वस्तुतः कृष्ण एवः" इत्यादि उक्तियों से "तथा-विश्वोद्धारार्थ मेवार्विभूर्त वृन्दावन प्रियः" से प्रतिपादित जो श्री कृष्ण के धर्म हैं वह सभी धर्म श्री महाप्रभू जी में भी वर्णित हैं। "ऐंन मेंन वृजराज उछंगे" श्री पद्मनाभदास जी ने भी कीर्तन किया है अतः उभय स्वरूपों में एकता सिद्ध होने से पुष्ट हुए चित्र जी में आविर्भाव तिरोभाव, मानना सिद्धान्त के विरुद्ध है। पुष्ट हुए चित्र जी की सेवा न होना भी अपराध है। और भावित स्वरूप की सर्वदा स्थिति मानना ही शास्त्र युक्त है।

ता० १३-१-५६

आनन्दीलाल शास्त्री,
अध्यक्ष—विद्या विभाग
श्री नाथद्वारा

श्री मथुराधीशो विजयते ।

श्री प्रथम पीठाधीश्वर की सम्मति

श्रीहरिः

अष्टाक्षर मंत्र के कीर्तन किये जाने के सम्बन्ध में मेरी सम्मति चाही जाती है—यह प्रश्न विचारणीय है। मैं नहीं चाहता कि संप्रदाय में व्यर्थ का वाद बिवाद हो। समय यह चाहता है कि संयुक्त मोर्चे से परिस्थिति का सामना किया जाय। मेरी व्यक्तिगत राय है कि अष्टाक्षर मंत्र का उच्चस्वर से कीर्तन करना उचित नहीं है।

गो० रणछोड़ाचार्य

ता० ३०-११-५५ जतीपुरा (मथुरा)

विजयते श्रीविट्ठलेशः प्रभुः

द्वितीय पीठाधीश्वर की सम्मति

अष्टाक्षर मंत्र के कीर्तन की प्रणालि केवल अर्वाचीनहैं क्योंकि श्रीमदाचार्य चरणों से लेकर जितने भी ग्रन्थकर्ता श्री महाप्रभुजी श्रीमत्प्रभुचरण गुसांईजी श्री गोकुलनाथ जी श्री हरिरायजी महाप्रभु श्री पुरुषोत्तम जी श्री गिरिधरजी (काशीस्थ) प्रभृति महानुभाव जो अभी तक हुए हैं उन्होंने भगवत्सेवा के अतिरिक्त अष्टाक्षर मंत्र के कीर्तन की महत्ता नहीं बतलाई है। अपितु मन्त्र को गहन रखकर जप करने का ही आदेश दिया है। जिसका प्रतिपादन इस ग्रन्थ में युक्ति-युक्त ढंग से गो० श्री यमुनावल्लभजी शास्त्री एवं श्री सत्यनारायणजी शास्त्री ने सुन्दरता से किया है। इस ग्रन्थ का अवलोकन करके प्रसन्नता हुई है वैष्णवों को चाहिये कि वे श्री मदाचार्य चरण एवं श्रीमत्प्रभु चरण तथा महानुभाव बालकों के प्रमाण रूप आदेशों को विशुद्ध बुद्धि से साग्रह पालन करें। उनकी आज्ञा पालन ही वैष्णवों का परमधर्म है।

(श्री विट्ठलनाथजी का मन्दिर
श्रीनाथद्वारा)

गो० गिरिधरलाल
ता० २६-१०-१९५५

॥ श्रीमदनमोहनो जयति

तृतीय पीठाधीश्वर गो० श्री व्रजभूषण लाल जी के अनुज गो० श्री विट्ठलनाथ जी के भाभी जी गो० श्री लावन्यवती जी बहूजी की सम्मति

—:※:०:※:—

हमारे आशीर्वाद-

स्वस्ति श्रीमद्गोस्वामि श्री गोपाललाल जी महाराज के लालजी श्री विट्टल नाथ जी महाराज के भाभी जी गोस्वामिनी श्री लावन्यबती बहू जी महाराजानां मथुरातः स्वकीयेषु श्रीहरिगुरु सेवा परायणान्तः करणेषु परम बैष्णवेषु श्री श्री निज सेबक—सपरिवारेषु शुभाशीर्वादाः सदा श्री सेव्यः—स्मर्तव्यः (शमिह) तत्रास्त्वपरञ्च—

हमारे सम्प्रदाय के गोस्वामि बालक तथा वैष्णवन कूं मालूम होय कि हमने यह सुनी है कि कोई बालक बहू बेटी अष्टाक्षर मन्त्र को तबला, सारङ्गी, हारमोनियम और घुंघरू करताल ले अष्टाक्षर मन्त्र को गाय के उच्चारण करें हैं, सो यह बात हमारी सम्प्रदाय में आज दिन तक कोई बड़ेन में नहीं करी है। और न ग्रन्थ में कहीं है। यह आज्ञा जरूर है कि अष्टाक्षर महामन्त्र एकान्त :

में बैठ के जप करनो चहिए। और होठ भी नहीं फरकनो चहिये। जब जा ठिकाने यह आज्ञा है कि होठ भी नहीं फरकनो चहिये वा ठिकाने ढोलक, हारमोनियम इत्यादि में गायकें कहनों सो यह बात सम्प्रदाय के विरुद्ध है और श्री महाप्रभुजी श्री गुसांई जी महाराज के सिद्धान्त के विरुद्ध पड़े है ! समय बहुत खराव है, हमारे गो० वालकन कूं तथा वैष्णवन कूं यह आज्ञा है कि सम्प्रदाय से कोई बात विरुद्ध परती होय तो वह नहीं करनी चहिये।

ता उपरान्त हमने अपने बड़ेन सूं यह भी सुनी है कि अष्टाक्षर मन्त्र देते समय पहिले वा जीव सूं यह नाम उच्चारण करायवे की प्रनाली पहिले हती और तो कहा काशी के घर में ही श्री कृष्णाय नमः श्री गोपीजन वल्लभाय नमः श्री मदाचार्य चरण कमलेभ्यो नमः ऐसे ही तीन बार नाम उच्चारण कराय कें पीछें अष्टाक्षर मन्त्र देते ऐसे भी हमने बड़ेन के मुँह से सुनी है सो गो० बालक बहू बेटी तथा वैष्णवन कूं विदित होय।

कार्तिक वदी १४ सं० २०१२

दि० १३-११-५५

॥ श्री गोकुलेन्दुर्जयति ॥

गोकुल–कामवनस्थ चतुर्थ-पञ्चम पीठाधीश्वर के विद्यातीर्थ शास्त्री श्रीगोकुलदासजी की सम्मति–

वेद वाक्ये महा वाक्यं पुराणे भारते तथा,
श्री मद्वल्लभवाक्यार्थं, श्रीकृष्णः शरणं मम ॥

अपने सम्प्रदाय में दो प्रकार की दीक्षा दी जाती है। नाम और निवेदन। प्रथम दीक्षा जो अष्टाक्षर महामन्त्र रूपा है, उसके विषय में साम्प्रत बड़ा विवाद उपस्थित हुआ है। एक पक्ष का मन्तव्य यह है कि महामन्त्र का सर्वथा जप की प्रणाली के अनुसार उच्चारण करना चाहिये, दूसरे पक्ष का कथन यह है कि ध्वनिवर्धक यन्त्रों द्वारा भी उच्चारण किया जाय। श्री मदाचार्य चरण-विरचित नवरत्न के अन्तिम श्लोक का आशय लेकर महामन्त्र का ध्वनिवर्धक–यन्त्र द्वारा उच्चारण करना साम्प्रदायिक परम्परा सन्मत नहीं है।

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं, श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेवं सततं, स्थेयमित्येव मे मतिः ॥ ९ ॥
[नवरत्न

यहाँ पर "वदद्भिः" अर्थात् बोलते रहने का आशय यह है कि इस महा मन्त्र का स्मरण मात्र न कर के उच्चारण भी करना चाहिये। क्यों कि वाणी तेजोमयी है। वागधिष्ठात्री देवता अग्निरूपा है। वह वाणीरूपा होकर मुख में प्रविष्ट होती है। ऐसा श्रुति कहती है। अतएव "श्रीकृष्णःशरणं मम" इस मन्त्र का उच्चारण करने से अंतः करण में प्रकाश पड़ता है। बोलने में वैखरी वाणी का उपयोग होता है। तथापि पश्यन्ती अन्तःकरण में प्रकाश डालती है। भगवन्नाम युक्त प्रकाश के बल से आसुरावेशी दूर हो जाता है। "वदद्भिः" का अर्थ सामान्य विज्ञापनों की तरह ध्वनिवर्धक-यन्त्रों द्वारा प्रकाशन करना साम्प्रदायिक परम्परा से सर्वथा प्रतिकूल है।

शास्त्री गोकुलदास

कामवन
दि० २२-१-५६

❀ श्री हरिः ❀

॥ श्री कल्याणरायो विजयते ॥

षष्ठपीठतिलकायिता गो० श्री १०८ श्रीकान्तवनी भाभीजी महाराज की आज्ञा से-

[ले० कविरत्न शा० गोविन्ददत्त चतुर्वेद मथुरा]

—:❀:०:❀:—

पुष्टि मार्गीय आचार्यों तथा वैष्णवों में मतभेद इस समय दो बातों को लेकर प्रचलित है। (१) अष्टाक्षर महामंत्र केवल जपनीय है कीर्त्तनीय नहीं। दूसरा पक्ष है कि "वदद्भिः" से जप और कीर्तन दोनों हो सकते हैं। (२) पुष्ट हुए चित्र जी में स्वरूप भावना का तिरोभाव नहीं होता जबकि दूसरा पक्ष यह मानता है कि छप्पन भोग में श्री भावना जी का जैसे आविर्भाव तिरोभाव होता है उसी प्रकार साम्प्रदायिक उत्सवों के अवसर पर तांत्रिकों के समान श्री चित्रजी की सेवा का तिरोभाव (वि र्जन) करने में कोई हानि नहीं। उक्त विषयों में वृद्ध बालकों द्वारा सुनीं कुछ बातें लिखने का प्रयास करता हूँ।

जिस प्रकार ब्राह्मणों को गायत्री दीक्षा प्राप्त होने के पश्चात् यज्ञ यगादि करने का अधिकार प्राप्त होता है उसी प्रकार शुद्धा-द्वैत पुष्टि मार्ग में भी शरणोपदेश तथा निवेदन होने के पश्चात्

ही भगवत् सेवोपयोगी देह प्राप्त होता है। अर्थात् सेवा करने की योग्यता आती है। उक्त मंत्र जपनीय है, श्री प्रभु चरणों ने अष्टाक्षर निरूपण ग्रन्थ में आज्ञा की "अहोरात्रं जपेन्नित्यं गुरूणां मंत्रमुत्तमम्।,, इसी आशयको "तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्री कृष्णः शरणं मम्, वदद्भिरेव स्थेयं मिति–"यहाँ सर्वात्मना (सर्वात्मभाव से) सततं (निरंतर) "वदद्भिः" (वाचिक जप) करने की अनुमति है, परन्तु इससे अनुपदिष्ट जनता के सम्मुख जप करने की विधि प्रतिपादित नहीं हैं। जब तक सर्वात्मभाव सिद्ध न हो निरंतर जप करना भी तो असम्भव ही है। गो० श्री द्वारकेश जी ने सेवा भावना नामक ग्रन्थ में इन मन्त्रों के जप करने के लिए ४ प्रकार की मालायें पुष्टि में निर्धारित की हैं। १—तुलसी, २—करमाला; ३—वर्णमाला, ४—काष्ठ माला–यदि उक्त मंत्र जपनीय न होता तो माला निर्धारित करने का भी कोई मूल्य न होता। "कृते लक्षंतु वर्षाणि त्रेतायामयुतं तथा, द्वापरेतु सहस्त्राणि कलौ वर्षशतं स्मृतम्"। कलियुग में मनुष्य की शतायु होने से उसका "शत मृत्यु विषय विनवेष" बतलाया है अर्थात् एक एक वर्ष की आयु को एक एक मृत्यु ले जाती है। "आयुर्हरतिवै पुंसाम्" का प्रमाण दे सिद्ध किया है इसीसे शरणोपदेश पश्चात् काष्ठ माला भी एक भगवदीय मित्र के रूप में देते हैं अतः उक्त मंत्र के श्रवण करने का अधिकार उसे ही है। तंत्र ग्रन्थों में भी निकृष्ट वाचिक जप अपना कर्ण ही सुनें इतने ही उच्च स्वर से करना कहा है। आगे श्री गो० द्वारकेश जी जप के दोय मंत्र

एक शरण, दूसरो निवेदन, मंत्र बतलाते हैं। शरण मंत्र का अवान्तर फल आसुरभाव निवृत्ति मात्र तथा श्रवण, कीर्तन, चरण सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, ये सात भक्ति मुख्यफल सिद्ध कहे हैं। अनन्तर निवेदन मंत्र की योग्यता होती है जिससे सख्य एवं आत्मनिवेदन अवान्तर फल तथा उक्त दोनों भक्ति बीज रूपा सिद्ध होती हैं। यदि अष्टाक्षर को केवल नाम मात्र में पर्यवसायी मानकर जपनीय न मानें तो उपदेश की भी कोई महत्ता प्रतीत नहीं होती। नाम तो बिना उपदेश के भी सुलभ है। इसी शंका को निर्मूल बताते हुए गो० श्री द्वारकेश जी आज्ञा करते हैं "बहिश्चेत् प्रकट स्वात्मा बह्निवत् प्रविशेद्यदि, तदैव सकलो बन्धो नाश मेतिन चान्यथा" अर्थात् जिस प्रकार अरड़ी काष्ठ में अग्नि के होते हुए भी दाहकत्व सामर्थ्य नहीं हैं जब मथी तो अग्निके प्रादुर्भाव होने पर काष्ठांश की निवृत्ति द्वारा अरड़ी अग्नि रूपता को प्राप्त हुई, इसी प्रकार श्री कृष्ण यद्यपि अंतर्यामी रूप से अन्तःकरण में स्थित हैं तो भी "बन्धन निवर्त्तकत्व सामर्थ्य" नहीं है अतः भगवत् प्राप्ति कैसे हो इसीसे उपदेश को मुख्य माना है। "अन्तः प्रविष्टो भगवान् मुखा दुद्धृत्य कर्णयोः पुनर्निवेश्यते सम्यक् तदा भवति सुस्थिरः"। बिना श्री वैष्णवीं दीक्षां प्रसादं सद्गुरोर्विना। बिना श्री वैष्णवं धर्मं कथं भागवतो भवेत्"। इससे गुरु उपदेश अत्यावश्यक है उपदेश न लेना ही बाधक है, "अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वं निरर्थकम्, पशु योनिमवा प्नोति दीक्षाहीनो मृतोनरः"। मंत्रोपदेश लेना चाहिये, प्रथम शरण मंत्र, पश्चात् निवेदन। इन्ही

दोनों मंत्रों द्वारा नवधा भक्ति सिद्ध होती है। जिसके बिना प्रेम लक्षणा भक्ति कदापि न हो सकेगी, तो श्री पुरुषोतम प्राप्ति कहाँ। आगे "मन्त्रोपदेश पाछें भजन हू श्री कृष्ण कौ ही करियै" शरण मंत्र जो अष्टाक्षर है उसी के फल प्रकरण में "अष्टौ कृष्णा भवन्ति हि" से एक एक अक्षर में आठौ स्वरूपों की भावना निहित हैं और आठौ स्वरूप भी गुप्त रस परिपूर्ण हैं "गुप्तोहि रसो रसमा पद्यते" "प्रकट किये रस जाइ" तस्मात् यत्नेन गोपयेत्" आदि असंख्य प्रमाण नाम मंत्र को भी गुप्त ही रखने के विषय में प्राप्त हैं। अपने पुष्टि मार्ग में तो आराध्य वस्तु को गुप्त रखना ही श्रेयस्कर कहा है। श्री चैतन्य महाप्रभू तथा श्री मद् श्री बल्लभा चार्य महाप्रभू जी के सिद्धान्त की समानता करना भी अविचार विजृम्भित है। कारण श्रीचैतन्यमहाप्रभु जारबद् भक्ति बतलाते हुए निराकार में पर्यवसान करते हैं जब कि अपने आचार्य श्री पतिव्रत भक्ति का उपदेश दे, "साकार ब्रह्म वादैक स्थापकः" सिद्ध हो चुके हैं। एक पतिव्रता स्त्री अपने प्राण पतिका उच्च स्वर से तो क्या मधुर ध्वनि से भी नामोच्चारण कभी नहीं करेगी चाहे प्राण क्यों न जांइ। इसी से तो श्री शुकदेव जी ने समग्र श्री मद्भागवत में श्री स्वामिनी जी (जो उनकी आराध्या हैं) का कही नामोल्लेख नहीं किया। "श्रेयस्कामो न गृह्णीयात्" की परम्परा आज भी सर्वत्र प्रचलित है। जब अन्य संप्रदायावलंबी भी अपने मंत्रों को गुप्त रखने में ही साग्रह हैं तब उन सबसे श्रेष्ठ "गाणपत्येषु शैवेषु तथा शाक्तेषु सुव्रते।

सर्वेषु मंत्रबर्गेषु वैष्णवं श्रेष्ठ मुच्यते। वैष्णवेषु च सर्वेषु कृष्ण मन्त्राः फलाधिकाः ॥ श्रीकृष्ण की शरण भावना रूप अष्टाक्षर मंत्र सब मन्त्रों में मुख्य है तो क्या इसलिए कि "माइक" पर प्रभात फेरियों में सभाओं में अन्य सम्बन्धी जीवों के सुनते उनके साथ साथ गान किया जाय। अपने मार्ग में तो मायावादी "माइकों" का पूर्व से ही प्रवेश रुद्ध है तो फिर "माइक" के माया जाल में स्वयं फंस कर अन्य वैष्णवों को घसीटना तो उचित प्रतीत नहीं होता, "यदुक्तं तात चरणैः श्री कृष्णः शरणं मम। तत एवास्ति नैश्चिन्त्यमैहिके पारलौकिके" में जो उक्त पद है वह भी शिवोक्त विभूति-प्रद अष्टाक्षर मंत्र को वक्ता के भेद से फल में भेद सिद्ध करते हुए श्री मद्भागवत के समान माना है।

किम् मन्त्रैर्बहुभिर्विनश्वर फलै रायास साध्यैर्मखैः किञ्चिल्लोप विधान मात्र विफलैः संसार दुःखावहैः। एकः सन्नपि सर्वमन्त्रफलदो लोपादिदोषोज्झितः। श्रीकृष्णः शरणं ममेति परमो मंत्रोयमष्टाक्षरः। कृष्णेति वैष्णवं मन्त्रं श्रुत्वा मुक्तोभवेन्नरः गृहाण मम मन्त्रं च कृष्ण इत्यक्षर द्वयम। सर्वेषामेव मन्त्राणाम् सारात्सारतरं परम्" ॥ सकृदेवप्रपन्नो यंतवाऽस्मीति च यो वदेत्। अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्"। इन सब प्रमाणों से श्रीकृष्ण ये द्वयक्षर मंत्र भी हर स्थान पर उच्च स्वर से गेय नहीं है। कारण निवेदन मंत्र में भी इसी का उपयोग होता है। यदि यह सब न माना जाय तो पंचाक्षर की भी आगे आने वाली सृष्टि यही दशा करेगी जो आज अष्टाक्षर महामन्त्र की की जारही है। और तब शनैः शनैः

गुरु शिष्य परम्परा ही लोप हो जायगी अतः आग्रह और अहन्ता का परित्याग कर अष्टाक्षर को मन्त्र रूप से ही स्वमार्गियों की मंडली में भी मधुर स्वर से जप करने की विधि होनी चाहिए। "वदद्भि" के समान "तवास्मीति च यो वदेत्" इसमें भी वद् धातु का ही प्रयोग हुआ है तव तो ध्वनिवर्धक यंत्र द्वारा पंचाक्षर मन्त्र का भी तार स्वर से उच्चारण कर प्रचारित करने का विरोध भी समाप्त हो जायगा।

पुष्ट हुए श्री चित्र जी अष्टा प्रकार प्रतिमा स्वरूपों में लेख्या नाम से आजाते हैं। और सर्वत्र वैष्णवों के घर प्रायः स्वरूप सेवा के रूप में सेव्य करके बालकों द्वारा पधराये जाते हैं। पुष्टि मार्ग में जहाँ खंडित विग्रह में से भी देवत्व का तिरोभाव न मान कर सेवा चालू है वहाँ सेव्य हुए श्री चित्र जी का बालकों द्वारा नीराजन आदि कराकर फिर सेवा न करने की सूझ तो बिलकुल नई हैं। अतः यह कार्य भी अविवेक पूर्ण एवं रीति विरुद्ध है। छप्पन भोग की भावना जी का तिरोभाव तो निधि स्वरूपों के सम्मुख ही होता है जो भक्ति हंस में भली भांति वर्णित है और "महिला मंडल जप यज्ञ सम्मिति" से उसकी (छप्पन भोग की) समानता देना भी असंगत प्रतीत होती है।

॥ श्री मदनमोहन प्रभुर्जयति ॥

कामवनस्थ सप्तम पीठाधीश्वर गो० श्री १०८ श्री घनश्यामलाल जी महाराज की सम्मति

॥ वंदे श्रीकृष्ण देवं मुर नरक भिदं वेद वेदान्त वेद्यं ॥
॥ लोके भक्तिप्रसिद्धयै यदुकुलजलधौ प्रादुरासीद पारः ॥
॥ यस्यासीद्रूपमेव त्रिभुवन तरणे भक्ति वच्चस्वतंत्रं ॥
॥ शास्त्रं रूपं च लोके प्रकटयति मुदा यः सनो भूतिहेतुः ॥

श्री मद्वल्लभाचार्य जी के पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षा के दो मन्त्र है. अष्टाक्षर महामन्त्र भगवद् शरणागति प्राप्त करने का मन्त्र है। और इस मन्त्र की दीक्षा द्वारा दास्य भक्ति पर्यन्त का अधिकार प्राप्त होता है। सख्य और आत्म निवेदन भक्ति के लिये ब्रह्मसम्बन्ध द्वारा प्रभु को सर्वस्व निवेदन करा कर सर्वात्म-भाव रूपी प्रेम लक्षणा भक्ति का अधिकार प्राप्त होता है, यह दोनों ही सम्प्रदाय में मंत्र रूप से प्रचलित हैं। जो मन्त्र से सम्बन्धित भगवद्नाम हैं वह प्रायः शास्त्र में गोपनीय ही है। मंत्र को सर्व के समक्ष उच्चारण करने से मंत्र के अन्दर की आधिदैविक शक्ति विनाश होती है। प्रायः भगवद् नाम लेने का सर्व को अधिकार है, परन्तु गुरू के द्वारा जो भगवद् नाम

दीक्षा लेने में आती है वह भगवद्नाम मन्त्र से सम्बन्धित है, और अधिकार सम्पादित है। जिस प्रकार से गायत्री मन्त्र वेदाध्ययन अधिकार को प्राप्त कराने वाला है, इसी प्रकार से वैश्वानरावतार श्री मद्वल्लभाचार्य जी के मुखारविन्द से प्रकट हुआ अष्टाक्षर महामन्त्र ७ भक्तियों के अधिकार को सम्पादन कराने वाला है। जो भक्ति मर्यादा के अनुसार एक जन्म में एक भक्त का अधिकार भक्तों को प्राप्त कराती है, जिस प्रकार से परीक्षित को श्रवण भक्ति, नारद जी को कीर्तन भक्ति, बलि राजा को आत्म निवेदन भक्ति, अर्जुन को सख्य भक्ति, प्रथु इत्यादिकन को अर्चनादि भक्ति प्राप्त हुई है, उन सर्व भक्तियों का श्री वल्लभाधीश्वर ने अष्टाक्षर मंत्र की दीक्षा द्वारा अधिकार प्रदान किया है। इस सिद्धान्त से यह ज्ञात होता है कि अष्टाक्षर महामन्त्र साधारण नहीं है कि जिसका प्रयोग सार्वजनिक समूह में उत्कंण्ठा रहित व्यक्तियों के समक्ष किया जावे। इस मन्त्र का प्रयोग तो भगवद् प्राप्ति की उत्कण्ठा धराने वाले जो व्यक्ति हों उनहीं के लिये दीक्षा रूप से प्रदान किया जाता है न कि ध्वनि रूप से, आचार्य चरणों के द्वारा प्रदान करने में आया है। दीक्षित मन्त्रों का ध्वनि रूप से घोषणा करना शास्त्रों के सिद्धान्त से असम्बद्ध है, क्योंकि शास्त्रों में ध्वनि के लिए अनन्त भगवद् नामों का समावेश किया है, किन्तु दीक्षा रूप से दिए हुए भगवद् नामों का ध्वनि में समावेश नहीं है।

जिस प्रकार श्रीमद्भागवत के माहात्म्य में श्री वासुदेव मन्त्र का ध्वनि रूप से नारदादिकों ने कीर्तन नहीं किया है, किन्तु श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती, इस भक्ति के मुखारविंद से निकले हुए नाम समुदाय का ध्वनि रूप से कीर्तन किया है, न कि दीक्षित मन्त्रों का, इसी तरह से अष्टाक्षर महामन्त्र का ध्वनि रूप से कीर्तन होना सम्प्रदाय के नियमों से विरुद्ध है। क्योंकि कीर्तन का अर्थ ध्वनि रूप से घोषणा करना नहीं होता है, किन्तु जो भगवद् नाम अथवा भगवद् कथा श्रवण की हो उसका गुणानुवाद करना ही कीर्तन है। इसका विचार श्री मद्वल्लभाचार्य चरण ने श्री सुबोधिनी जी के द्वितीय स्कन्ध में दिया है। इस सिद्धान्त से आचार्य के मुख: द्वारा दीक्षा रूप से प्राप्त हुआ जोअष्टाक्षर महा मन्त्र की वाणी द्वारा पुनरावृत्ति करना ही कीर्तन है उसी के लिए श्री आचार्य चरण ने नवरत्न ग्रन्थ में "वदद्भिरेवंसततं" यह पद दिया है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इस महामन्त्र का ध्वनि रूप से घोषणा कर के उच्चारण किया जावे। और इसके अन्दर वहु वचन का जो प्रयोग है वह आत्मनिवेदनियों के उल्लेख से है नकि जन समूह रूप से उच्चारण करना होता है। इसी सिद्धान्त से श्री हरिराय जी ने त्रयोविंशत पत्र में ६ से १२ श्लोक तक बहिर्मुख जीवों के संग का त्याग करने के लिए और अपने अन्दर बहिर्मुख धर्म प्राप्त न हो इसके लिए श्री मद्भागवत का पाठ, अर्थ श्रवण निवेदन स्मरण के संग भगवद् कथा–सदा नाम

ग्रहण-सदा शरण भावना और अष्टाक्षर महा मन्त्र को बार-म्बार उच्चारण करना एक क्षण मात्र श्री भगवद् नाम का त्याग न होना उस सम्बन्ध से "अष्टाक्षर महा मन्त्र कीर्तनेन विशेषत:" यह सिद्धान्त आपने प्रतिपादित किया है, नकि ध्वनि के लिए इस कीर्तन शब्द का प्रयोग किया है। इन सिद्धान्तों से सुज्ञ वैष्णव वृन्दों को ज्ञान होगा कि यह मन्त्र स्मरणीय है क्योंकि श्री विट्ठलेश प्रभु ने अष्टाक्षर निरूपण ग्रन्थ में जपेत् शब्द का ही प्रयोग सर्वत्र किया है और पठेत् शब्द भी जन समुदाय में बोलने का वाचक नहीं है, किन्तु व्यक्तिगत ही है। और इस से भी यह सिद्धान्त प्राप्त होता है कि "इदमेव परैकांत भक्तिमान् य: सदा स्मरेत्" इस सिद्धान्त से भक्तिमान् पुरुष को एकान्त स्थल में नित्य स्मरण करना ही होता है और वही फल सिद्धि को देने वाला है।

ऊपर के सिद्धान्त से सुज्ञ वैष्णव वृन्द को सूचित हो कि अष्टाक्षर महामन्त्र का जप तथा स्मरण ही करना उचित है।

ह० गो० घनश्याम लाल

कामबन
दि० २३-१-५६

श्रीहरिः।

H. H GOSWAMI SHREE
DIXITJI MAHARAJ

Telephone No 20351.
Telegraphic Address
"HOLYWRIT"

GOVIND BHUVAN
3RD BHOIWADA
BHULESHWAR
BOMBAY 2

Date. १६-१०-1954

जपयज्ञ समिति द्वारा संचालित जपयज्ञ के (वास्तव में नाम संकी-
र्तनयज्ञ के) समय श्री आचार्यचरण के चित्र जी को पधरा कर
नीराजन करना भोग धरना इत्यादि स्वरूपाविर्भाव सूचक सेवाकृ-
ति तथा पुनः स्वरूपतिरोभाव करना सम्प्रदाय सिद्धान्त से
सर्वथा विरुद्ध है। इस तरह स्वेच्छानुकूल आविर्भाव तिरोभाव
करने का अधिकार सिद्धान्त दृष्टि से सर्वथा किसी को नहीं है।
अपनी निजी लौकिक उन्नति को पोषण करने के लिये श्री यमुनाजी
तथा श्री स्वामिनीजी के भावना पधराने की बात का उद्देश्य भी सर्वथा
सिद्धान्त का ही परिनाशक है। श्री स्वामिनीजी आदि की भा-
वना पधराना भक्तिहंस में कथित [illegible] उपदेश मूलक है
यह उपदेश ही सेवारीति नियामक है। इस तरह उपदेश करने
का अधिकार श्रीमदाचार्यचरण श्रीमत्प्रभुचरण तथा महानुभावों
को ही है आधुनिक गोस्वामि बालकों को भी नहीं है। इसी उपदेश अ-
नुसार आधुनिक गोस्वामिबालक भी भावना नहीं पधराते हैं
सकते हैं। स्वसंचालित नवीन प्रक्रिया के समय [illegible] स्वेच्छानु-
सार आचार्यचरण को पुरुषोत्तम स्वीकार न करना महादुस्साहस है
अवैष्णवता परिचायक है।

गो० दीक्षित

❀ श्री हरिः ❀

"विद्यावारिधि" एच. एच. गोस्वामी श्री १०८ श्री दीक्षित जी महाराज की सम्मति

जप यज्ञ समिति द्वारा संचालित जप यज्ञ के (वास्तव में नाम संकीर्तन यज्ञ के) समय श्रीआचार्य चरण के चित्रजी को पधराकर नीराजन करना भोग धरना इत्यादि स्वरूपाविर्भाव सूचक सेवाकृति तथा स्व स्वरूप तिरोभाव करना सम्प्रदाय सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है। जिस तरह स्वेच्छानुकूल आविर्भाव-तिरोभाव करने का अधिकार सिद्धान्त दृष्टि से सर्व व्यक्तियों को अपनी सिद्धान्त विरुद्ध कृति को पोषण करने के लिये श्रीयमुना जी तथा श्री स्वामिनी जी की भावना के पधराने का उल्लेख भी सर्वथा सिद्धान्ताऽज्ञान का ही परिचायक है। श्री स्वामिनी जी आदि की भावना पधराना "भक्तिहंस" में कथित स्नेहवत् कृत उपदेश मूलक है यह उपदेश ही सेवा रीति नियामक है। इस तरह उपदेश करने का अधिकार श्री मदाचार्यचरण श्रीमत्प्रभुचरण तथा महानुभावों को ही है। आधुनिक गोस्वामि बालकों को भी नहीं। उन्हीं के उपदेशानुसार आधुनिक गोस्वामि बालक भावनाजी पधराते हैं। स्वेच्छानुसार स्वसंचालित नवीन प्रक्रिया के समर्थनार्थ श्री मदाचार्य चरण को पुरुषोत्तम स्वीकार न करना अवैष्णवत्व का परिचायक है।

गोविन्द भवन
गो० दीक्षित

३ रा भोईवाड़ा, बम्बई

❀ श्री हरिः ❀

अ० सौ० काशीस्थ श्री कृष्णप्रिया बेटी जी
—का लेख—

४१ पृष्ठ "अष्टाक्षरमहामन्त्र" पुस्तक से उद्धृत

श्री भगवन्नाम का जप करना आवश्यक है। जप की आवश्यकता और महत्ता सर्व शास्त्रों में विशेष रूप से वर्णित है कि श्री भगवन्नाम का जप करना चाहिये किन्तु प्रधान रूप से अपनी संप्रदाय के मर्यादानुसार अपने गुरुदेव से प्राप्त मन्त्र का जप यथोचित एवं शीघ्र ही फलदायी होता है।

हमारा इष्ट मन्त्र है "अष्टाक्षरमहामन्त्र" और इसका हमें यथाशक्ति नियम पूर्वक जप करना चाहिये। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि मानस जप सबसे उत्तम जप है।

सं० २०१२ मार्ग कृ० ३

चतुर्वेदी श्रीपुरुषोत्तम शर्मा काशीराज्य–रामनगर काशी

आप लिखते हैं कि–"जप मानसे च" इसके द्वारा उसका मानस भाषण में ही विशेष प्रयोग अभीष्ट है लोक में भी यही देखा जाता है।

ता० ११–११–५५

❀ श्री नटवर प्रभुर्जयति ❀

पूज्यपाद सेवासागर गोस्वामि श्री रणछोडलाल जी महाराज श्री के अमूल्य वचनामृत हस्तलिखित 'गुर्जरीगिरा' से अनुवादित वचनामृत संख्या ९७९

श्री गोपीनाथ जी (दीपक वाले) दीपक प्रकट कर के अष्टाक्षर महामंत्र का जप करते थे। आपके समय में दीपक में से कुमकुम गिरता था अब मसी गिरती है। आपश्री नित्यलीला में पधारे उसके पश्चात् आपके श्री बेटी जी ने भी जप का प्रकार चालू रखा, क्योंकि उनकी दीपक की मनौती बहुत ही चलती थी। अभी भी उसकी मसी में इतना चमत्कार है कि अंजन करने से आंख में के फूला वगैरह को काट कर मिटा देता है। इसी तरह सौराष्ट्र में मौरवी और कच्छ माडवी में भी ऐसे अखंड दीपक प्रकट किये हैं।

'सेवा' यह तो हमारा व्यवसाय है और अपने व्यवसाय से भी क्या किसी को अरुचि होती है। क्या तुम कमाईमें अरुचि करते हो। जो हम सेवा में अरुचि करें वचनामृत सं० ९८०। 'खंडिता और हिलग सिवाय के कीर्तन भले प्रकाश में आवें—'

व० सं० १०२७

हाथ से काम और मुख से नाम यह अपने मार्ग का सिद्धान्त है सेवा छोड़ कर सहस्रों नाम ले तो निरर्थक है। सेवा मुख्य और नाम तो उसके अंगभूत हैं व० सं० १००७

गुप्त रहे वहां तक प्रमेय, प्रकट होजाय सो वह अधर्म व०सं०१०२८

(अनुवादक) ललितकुमार कोटेचा

तीजा भोईवाडा, बम्बई

॥ श्री नाथजी ॥

* श्रीमन्नटवरमूर्तिर्विजयते *

माडवी वाले गो० श्री घनश्याम लाल जी महाराज की बेटी अ० सौ० श्री जमना बेटी जी की सम्मति

स्वस्ति: श्रीमद्गोस्वामि माडवी स्थित श्री घनश्यामलाल जी महाराजानां बेटीजी अखंड सौभाग्यवती श्री जमना बेटी जी शर्मणां स्वकीयेषु परम वैष्णवेषु श्री हरि गुरु सेवा परायणांत: करणेषु वैष्णव श्री २ समस्त पुष्टिमार्गीय वैष्णवेषु सपरिवारेषु शुभाशिश: सदा श्री सेव्य: स्मर्तव्यश्च अपरंच समाचार जानोगे।

हमारे सुनने में आई है कि काशी, कलकत्ता, प्रभृति (नगरन) में कछुक वैष्णव श्री कृष्ण महामन्त्र को (अष्टाक्षर को) वाजित्र आदि सूं गायकें कीर्तन करें हैं। यह प्रथा अपने सम्प्रदाय की प्राचीन परंपरा सूँ नहीं है। सर्वथा पुष्टि मार्गीय स्वरूप के विरुद्ध है याकौ प्राचीन परंपरानुसार मन में जप करनो ही उचित है।

विशेष कहा लिखें तुम्हारी सेवा क्षणार्ध भूलें नहीं है सदा सेवामें चित्त राखो हो ताते अधिक राखोगे।

पौष शु० २, सम्वत् २०१२,

* श्रीगोपीनाथो जयति *

यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत् ।
तमहं सर्वदा वन्दे श्री मद्वल्लभनन्दनम् ॥

सारस्वत द्विजकुल भूषण श्री आठवें लालजी महाराज के वंशज श्री गोपीनाथ निधि सेवाधिकारि गोस्वामि श्री रत्नलाल जी महाराज की

सम्मति

श्री आठवें लाल जी को श्रीमत्प्रभुचरण गुसांई श्री विट्ठल नाथ जी ने श्री श्री गोपीनाथ जी की सेवा पधराई और जीवों के उद्धार हेतु सिंध पंजाब जाने की आज्ञा प्रदान की। उसी आज्ञानुसार आज पर्यन्त आप के वंशोद्भव गोस्वामि बालक अष्टाक्षर महामंत्र "श्री कृष्णः शरणं मम" की दीक्षा देते चले आ रहे हैं। अब विचारणीय है कि जिनको "ब्रह्मसम्बन्ध" दीक्षा नहीं प्राप्त हुई केवल अष्टाक्षर ही मिला है, यदि वे लोग इस का सभी जनता के सन्मुख कीर्त्तन करें या सुनें तो एकान्त भावना करने का या मानसिक जप करने का अधिकार किस मंत्र में स्थिर होगा क्यों कि ब्रह्मसम्बन्ध और अष्टाक्षर दोनों श्रीपुष्टिमार्गीय दीक्षा के मंत्र हैं।

अष्टाक्षर मंत्र की दीक्षा के समय जीव के कर्ण में धीरे से मंत्रोच्चारण की परिपाटी से इस मन्त्र की गोपनीयता भली भांति सिद्ध हो जाती है, और अपने घर में भी चार सौ वर्ष से यही प्रणाली बराबर चली आ रही है।

हम लोग जिसे भी दीक्षा देते हैं उसे नियम पालन पूर्वक मानसिक जप करने की ही आज्ञा देते हैं।

यथार्थ बात तो यही है कि श्री मद्वल्लभाचार्यचरण का मार्ग रसात्मक और गोप्य है। पुष्टि मार्ग की रीति समझना प्रत्येक का काम नहीं इसका नाम ही कृपा मार्ग है। श्री महाप्रभु जी श्री गुसांई जी कृपा करें तभी जीव समझ सकता है कि पुष्टि मार्ग कैसा है। अतः सभी से हमारा निवेदन है कि इस अष्टाक्षर महामन्त्र को एकान्त में पान करें तथा इस विवाद से अन्य मार्गियों को परिहास करने का अवसर नहीं दें।

रत्नलाल गोस्वामी
३१-१-५६

श्री सुक्खन माता कुञ्ज
श्री वृन्दाबन धाम

❀ श्रीनाथजी ❀

बागरोदी कृष्णचन्द्र शास्त्री साहित्यरत्न अध्यक्ष शिक्षासदन नाथद्वारा राजस्थान

—की सम्मति—

श्रीमद् श्री वल्लभाचार्य चरण द्वारा संस्थापित शुद्धाद्वैत पुष्टि मार्गीय सम्प्रदाय में करीबन चार वर्ष से "श्री कृष्ण: शरणं मम" इस महामन्त्र को लेकर विवाद सा चल पड़ा है और उसमें दो पक्ष खड़े होगये हैं।

एक पक्ष सम्प्रदाय के प्रधान २ आचार्य और शिष्ट वैष्णवों का है उनका कथन है कि "श्रीकृष्ण: शरणं मम" यह महामन्त्र है और गुरु के द्वारा इसे प्राप्त कर इसका जप करना ही परम्परानुसार प्रचलित है और अद्यावधि आचार्यों की पद्धति भी ऐसी ही है, गुरु ही इसके साक्षी और कुलक्रमानुसार प्रमाण है। इसके सिवाय यह स्वरूप सेवा का भी प्राधान्य है क्यों कि स्वरूप की सेवा, और शरण मन्त्रजप, और आत्मनिवेदन ही यहाँ के चरमलक्ष्य है, मन्त्र जप कीर्तन समाज, या मन्त्रजप कीर्तन मंडली तय्यार हुई यह अब तक देखी नहीं गई, यह सम्प्रदाय में सम्प्रदाय की पद्धति से भिन्न क्रम है।

दूसरा पक्ष जिसकी सञ्चालिका प्रधानतः श्री कृष्णप्रिया बेटी जी तथा उनके अनुयायी व्यक्ति है जिनका दुराग्रह है कि "श्रीकृष्णः शरणं मम" इस मन्त्र का कीर्तन ही प्रधानतः करना तथा उसको ध्वनि मन्त्रों द्वारा विस्तरित करना ठीक है। इसके लिये उन्होंने एक समिति की भी कल्पना करली है और १०१) रुपे तक चन्दा (सदस्य शुल्क लेकर सदस्य बना उपर्युक्त शरण मन्त्र गीता पाठादिका खुले तौर पर व्यापार किया जारहा है।

जब कि गोरखपुर आदि स्थानों से आज भी भगवन्नाम, गीता पाठ, रामायण पाठ, आदि निशुल्क होते हैं वहां भी केवल निःशुल्क ही सदस्य बनाये जाते हैं।

अस्तु इस सम्बन्ध में मेरे विचारों की भी अकांक्षा की गई है उस पर शास्त्रानुसार मेरे विचार इस प्रकार हैं:—

इस कलिकाल में संसार संतप्त प्राणियों के उद्धार के लिये श्रीमद् श्रीवल्लभाचार्य ने प्राकट्य लेकर भगवत् अवतार के नाते पूर्वापर स्थिति का अपने ज्ञान चक्षुओं से पूरा पर्यबेक्षण कर सवजन सुलभ पुष्टिमार्ग का प्रचार किया और उसमें पहले नित्य श्री विग्रह की सेवा को प्रधानता दी क्योंकि पुष्टिमार्ग में सेवा और स्मरण ही महत्वपूर्ण वस्तु है, स्मरण या जप सेवा का ही एक अङ्ग है।

कृष्ण सेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता।

सेवापि कायिकी कार्या निरुद्धे नैव चेतसा
दैहिकं कर्म निखिलं प्रभु सेवोपयोगिनाम्

आदि श्लोकों में सेवा की महत्ता प्रकट है जिसे वैष्णव समाज जानता है और अनुभव करता है। इसी से तो लिखा है:-

तस्माज्जीवा पुष्टि मार्गे भिन्ना एव न संशयः
भगवद् रूप सेवार्थं तत्सृष्टि र्नान्यथाभवेत्

उक्त श्लोक से यह सिद्ध होता है कि पुष्टिमार्गीय जीव अन्य जीवों से भिन्न है और उसकी सृष्टि भगवत्सेवा के लिये है। इसी से तो आचार्य चरणों ने—देश, काल, कर्म, कर्ता, आदि के दूषित होने से—

सर्व मार्गेषु नष्टेषु कलौतु खल धर्मिणि,
पाखण्डप्रचुरे लोके कृष्ण एव गतिर्मम।
म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च
सत्पीड़ाव्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम।

इन श्लोकों में श्रीकृष्ण की महत्ता सिद्ध की हैं और वही इस कलिकाल में उपास्य है यह बताया है अतः इस सम्प्रदाय में सगुण यशोदोत्सङ्ग लालित श्रीकृष्ण स्वरूप ही हमारे लिये आराध्य एवं माननीय हैं।

सेवा कृति गु रो राज्ञा बाधनं वा हरीच्छया,
अतः सेवा परं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्।

इस प्रकार यहां सेवा की प्रधानता सिद्ध होती है। इसके पश्चात् "श्रीकृष्णः शरणं मम" इस शरण मन्त्र तथा आत्मनिवेदन का आरम्भ होता है अष्टाक्षरार्थ निरूपण में लिखा गया है कि—

श्रीकृष्ण, कृष्ण कृष्णोति कृष्ण नाम सदाजपेत्
आनन्दः परमानन्दो वैकुण्ठं तस्यनिश्चितम्
यःस्मरेत्तु सदामन्त्रं श्रीकृष्णः शरणं मम
अष्टाक्षरं जपेन्नित्यं यमो दृष्ट्वाहि शङ्कते

इन श्लोकों पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि उठते बैठते, चलते, घूमते सभी अवस्था में सतत श्रीकृष्ण का जप ही करना चाहिये, जप शास्त्रों में तीन प्रकार के माने गये हैं मानसिक उपांशु, और वाचिक, वाचिक जप भी साधारण रूप से ही बोला जाता है इनमें उच्चस्वर से उच्चारण करने का निर्देश नहीं है वह पहिले अभिप्रेत ही था—

महानुभाव श्री हरिराय जी ने अपने शिक्षा पत्र में—

अष्टाक्षर महामन्त्रो वक्तव्य इति निश्चयः
सर्वदा सर्वभावेन तेन सर्वं भविष्यति

यहाँ भी वक्तव्य का अर्थ बोलना आवश्यक है परन्तु उच्च-स्वर या तार स्वर से बोलना अर्थ नहीं है अन्यथा उच्च तार आदि पद रखे जा सकते थे, उच्चस्वर से बोलने पर प्रभु सेवा में अन्त

राय होगा सेवा करते समय नाम स्मरण करते रहना यह वैष्णवों का कर्तव्य है अतः साधारण बोलना ही यहां अभीष्ट है।

अष्टाक्षर महामन्त्र कीर्तनेन विशेषतः
सदानामग्रहणतः सदा श्री कृष्ण ।त्रनात्

इस श्लोक में स्थित कीर्तन शब्द को लेकर बड़ी खींचतान मचाई जारही है और अपना अभिमत उच्चस्वर से बोलना या कीर्त्तन करना सिद्ध किया जा रहा है पर इस पर भी विज्ञजन थोड़ा सोचलें कीर्त्तन शब्द का कोशों में अर्थ, उक्तौ, कथने, ऐसा लिखा है इससे साधारण रूप से बोलना ही सिद्ध है, सामुदायिक कीर्त्तन या तारस्वर से ध्वनि मन्त्र में उच्चारण प्रकट नहीं होता अष्टछाप के कीर्त्तनकार श्रीकृष्णदासजी ने जो–

कृष्ण श्रीकृष्ण शरणं मम उच्चरे
रैनदिन नित्य प्रति सदा पलछिन घरी
करत विध्वंस जन अखिल अघ परिहरे

इसमें भी उचरे का अर्थ कीर्तन नहीं है। गोस्वामिवर्य्य श्री ब्रजरत्नलाल जी महाराज श्री की आज्ञा से जो शास्त्री जी श्री चिमनलालजी ने उपदेश शंका निराशवाद की पंक्तियाँ उद्धृत की हैं–जिसमें—

"वस्तुतस्तु नायं जपः किन्तु कीर्तनमेव स्मरणं वा"

इस पर भी मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि उन्होंने भी पूरा विचार शायद नहीं किया।

यहां भी कीर्तन का अर्थ सामुदायिक कीर्तन न होकर केवल साधारण उच्चारण ही है ऐसा मैंने अपने गुरुओं से सुना और जहां तक याद है पढ़ा है।

मैं तो यह भी कहूँगा कि श्रीमद्भागवत में जो नवधा-भक्ति का निरूपण है।

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं"

इसके अन्तर्गत भी कीर्तन से उच्चारित साधारण वाचिक जप ही है और स्मरण से मानसिक जप, यदि कीर्तन का कीर्तन ही अर्थ कर लिया जाय तो जो व्यक्ति या वैष्णव सतत वाचिक जप करते हैं उनका किस भक्त की श्रेणि में ग्रहण किया जायगा, क्योंकि स्मरण का उल्लेख कर दिया गया परन्तु साधारण स्थिति से जप करने वाले का इसमें ग्रहण ही नहीं अतः कीर्तन शब्द वाचिक जप का द्योतक है जो आचार्य चरणों ने—

तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम
वदद्भिरेवं सततं स्थेयमित्येव मे मतिः

नवरत्न के श्लोक में लिखा है उस पर अपर पक्षियों का कथन है कि वदद्भि शब्द का उच्च स्वर से बोलना या ध्वनि यन्त्र से बोलना यह ठीक अर्थ है पर यह मेरे तथा शास्त्रों के अनसार

असंगत है क्यों कि वद शब्द 'वद् व्यक्तायां वाचि' धातु से बना है जिसका अर्थ है बोलना, अतः यह निश्चित है कि आचार्य चरण का भाव बोलने में अवश्य था नकि चिल्ला कर या ध्वनि मन्त्र द्वारा उच्चस्वर से विस्तरित करना, और यहाँ जो तृतीया बहुबचन है उसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक वैष्णव-वैष्णव को इसका जप करना चाहिये यहां के सर्वात्मना और सततं पद भी देखने योग्य है। श्रीमदाचार्य चरण को सामुदायिक रूप से कीर्तन मण्डली बनाकर उसकी उच्च ध्वनि कराना अभिलषित होता तो "सतत" पद का प्रयोग कैसे ठीक है इसका निरन्तर जप ध्वनि मन्त्र के द्वारा करते रहने पर काल बाधक है।

नवरत्न के इस श्लोक की व्याख्या में जो श्री गुसाई जी ने लिखा है।

नित्यमिति नैरन्तर्य मुच्यते अन्यथा कालेनाऽऽसुर धर्म प्रवेशःस्यात्, अन्तःकरणेऽ तथा भावे वा तथा वदनमा वश्यकम्—इतिज्ञापयितुं सततमेववदद्भिरित्युक्तम्। एवं सति लोकशिक्षाप्यानुषङ्गिकी सिद्धयति—एवमुक्त प्रकारेण सेवा परतया स्थेयमित्यर्थोवा।

इससे भी यह सिद्ध नही है कि उच्चस्वर से बोलना, लोक शिक्षा कैसे होगी यदि यह विचार किया जाय तो उसका खण्डन तो यह है कि भगवदीयों के साहचर्य से दूसरा भी भगवदीय

निश्चित रूपेण बन जायगा, इससे लोक शिक्षा सिद्ध होगी, वह वैष्णवों के समान ही सद्व्यवहार करने लगेगा। महानुभाव श्री हरिरायजी ने जो—

"अस्माकं साधनं साध्यं श्रीकृष्णः शरणं मम"

व्यक्त किया है इसमें कहीं उच्चस्वर से करने का उल्लेख नहीं इसका अर्थ है हमारे लिये साधन साध्य श्रीकृष्ण ही है।

कोई यह कहे कि यह महामन्त्र है और मन्त्र शब्द मन्त्रिगुप्तभाषणे, से सिद्ध होता है अतः गुप्त ही जप होना चाहिये. पर गुप्त का अभिप्राय रहस्यमय भी है साथ ही जप प्रकार में मानसिक उपांशु वाचिक तीनों का निर्देश है यदि मानसिक जप न कर सके तो उपांशु और उसके अभाव में वाचिक जप भी कर सकता है पर वाचिक जप उच्चस्वर का जप नहीं है न सामुदायिक रूप से या ध्वनियन्त्र से विस्तारित करने का, यह जप भी सहधर्मियों के सामने ही उच्चरित होता है अन्यों के सामने नहीं।

यदि यह कहा जाय कि वाचिक जप उत्तम श्रेणि का जप नहीं है तो उसके लिये यही लिखना पर्याप्त है कि जपके जो विधान हैं वह कामना परक मन्त्र सिद्ध के जप के लिये है, भगवान् के मन्त्र का तो वाचिक जप भी मङ्गल मय ही है। इससे वदद्भि आदि शब्दों की संगति बैठ जाती है।

सिद्धान्ततः तो यही है कि "अहो रात्रं जपेन्नित्यं गुरूणांमन्त्र मुत्तमम् ।

अब थोड़ासा कीर्त्तन के सम्वन्ध में भी विचार कर लिया जाय तो अनुचित न होगा। कीर्त्तन साहित्य की सम्प्रदाय में कमी नहीं है अनेकों कीर्त्तन हैं और उनका कीर्त्तनकार कीर्त्तन करते हैं।

पुष्टि सम्प्रदाय में कीर्त्तन परम्परानुसार पदों का होता है जिसमें भगवान् की लीलाओं और गुणों का संग्रह है। और अष्टछाप के सूरदास नन्ददास प्रभृति कवियों ने उसका प्रचार किया है, सो अद्यावधि इस सम्प्रदाय में भगवत्सेवा के साथ किया जाता है जिसमें संगीत और वादन दोनों की मुख्यता है इस सम्प्रदाय में या किसी अन्य सम्प्रदायों में भी भगवल्लीलाओं और गुणों के अतिरिक्त नाम मन्त्र या शरण मन्त्र का कीर्त्तन सुना नहीं जाता—कीर्त्तन के भी दो प्रकार हैं एक व्यक्तिगत रूप से जैसे नारद, सरस्वती, आदि है दूसरा सामुदायिक रूप से- उसके करने के पश्चात् भगवान का आविर्भाव होता है जैसा कि श्रीमद्भागवत में वर्णित है। यहां कीर्तन के पश्चात् आविर्भाव की बात ही नहीं है। कीर्तन के सम्बन्ध में श्री कृष्णप्रिया बेटी जी ने जो अपनी "अष्टाक्षर महामन्त्र" पुस्तक के ३ पृष्ठ पं० ५ में लिखा है।

अष्टाक्षर महामन्त्र को समुदाय में नाम संकीर्तन रूप से करने की आज्ञा तथा मर्यादा सनातन काल से प्रचलित है। तथा दूसरे स्थान पर अष्टाक्षर महामन्त्र पृ० ३-पं०२२ अष्टाक्षर मन्त्र का जप एवं कीर्तन का सामुदायिक रूप में प्रचार अब कुछ काल से होने लगा है। इन पंक्तियों का भाव विज्ञपाठक ध्यान से सोचलें इसमें बेटीजी ने यह तो बताने का श्रम नहीं लिया कि अमुक आचार्य संकीर्तन समाज इकट्ठा कर बैठते थे और अमुक अमुक संकीर्तन मण्डली के सदस्य थे और अमुक चन्दा लेकर प्रचार किया जाता था, यह इतिहास उपलब्ध हो तो देखने की इच्छा है।

अ० सौ० श्री कृष्णप्रिया बेटी जी ने जो श्री चैतन्य महाप्रभु जी का उल्लेख करते हुए संकीर्तन के सम्बन्ध में लिखा है उस पर भी थोड़ा ध्यान देना आवश्यक है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु ईश्वर स्वरूप थे उन्होंने स्वरूप सेवा की पद्धति का प्रचार न कर कीर्तन भक्ति का ही प्रचार किया था क्योंकि वह निगुण वादी थे, उनके कीर्तन भी उनके समाज में ही या उनके शिष्यों व तद्धर्मियों में होते थे। इतर व्यक्तियों का उसमें प्रवेश नहीं होता था, जहां कीर्तन होता था वहां पट बन्द कर दिये जाते थे तथा जब वह सन्यासी होगये तब ही उन्होंने उसका प्रचार प्रारम्भ किया साथ ही उस कीर्तन समाज में वह सम्मिलित

होते थे जिन्हें पहिले भगवन्नाम मन्त्र सुना कर भक्त बना लिया जाता था।

यथार्थ में कीर्तन का प्रचारक भी वही बन सकता है जो भगवद् स्वरूप हो, या पहुँचा हुआ भक्त, या सन्त, जिसमें यह क्षमता होनी चाहिये जो भारी से भारी कष्ट का सामना कर सके जैसे—श्रीनित्यानन्द प्रभु के शिर पर जंगाई, मधाई ने ताड़ना की और उनके शिर से अजस्र रक्त की धारा बहने लगी पर वह कुछ भी नहीं बोले प्रत्युत भगवान् से उनके अपराध की क्षमा याचना की, अतः सिद्ध है कि प्रचारक में त्याग, दया; सहिष्णुता, चरित्र बल, अहिंसा, सत्य, धृति. क्षमा आदि सद्गुणों का होना भी आवश्यक है।

अब कुछ बेटी जी महाराज की पंक्तियां भी पढ़ले, आपने अष्टाक्षर महामन्त्र पृ० ५ पं० २० से।

प्रचीन काल में महर्षियों के यज्ञ तपश्चर्यादिकों में केवल दानव मानव ही नहीं देवताओं ने भी अपनी अल्पज्ञता तथा स्वार्थान्धता के कारण विघ्न किये। अष्टाक्षर महामन्त्र पृ०६-पं४से—

आप अपने अहंभाव तथा प्रमाद के कारण यदि जप, यज्ञ कीर्तन आदि जैसे महान् शुचितम और विश्व मङ्गलमय कार्यों में योगदान करने में असमर्थ हैं तो आपको आग्रह कौन करता है हम पूछते हैं कि सम्प्रदाय के हिताहित की जबाबदारी आपके ऊपर क्या है। अष्टाक्षर महामन्त्र पृष्ठ १८ पं० २२

सम्प्रदाय के अनुयायी जनों की इस परम आल्हाद कारिणी प्रवृत्ति में अडचन डाल कर भक्ति मार्ग में प्रचार और संगठनादि में विघ्न करेंगे वे भगवद्द्वेषियों की श्रेणिमें समझे जायेंगे।

इन उद्धृत पंक्तियों पर पाठक स्वयं भी विचार करें, क्या अपने ही आचार्यों और सम्मान्य पूर्वजों पर यह आघात नहीं है और इसे भावावेश क्या नहीं कहा जा सकता, कीर्तन प्रचारक एवं महाप्राण की यह उक्तियाँ क्या ठीक है।

इस सम्प्रदाय में अहंकार और मिथ्या आग्रह तो सर्वथा निषेध है, फिर ऐसा क्यों हो रहा है।

क्या कीर्त्तनों का इस सम्प्रदाय में अभाव है या भगवान् के नामों की न्यूनता हो गई है, या वह उपयोगी नहीं रहे जो महा मन्त्र से ही कीर्त्तन करना साध्य माना जा रहा है। कीर्त्तन को मंगलमय मानने में किसी ने भी आपत्ति नहीं की न किसी प्रकार की कोई बाधा पहुँचाने के इच्छुक है, बात तो केवल यही है कि "श्री कृष्णः शरणं मम" इस मन्त्र का उच्चस्वर से उच्चारण करना या ध्वनि यन्त्रों द्वारा विस्तारित करना या उसे संकीर्त्तन के रूप में स्वीकार करना एक खटकने की वस्तु है।

क्योंकि अपनी पद्धति से विपरीत क्रम से उसे चलाना यह एक मर्यादा मार्ग की पद्धति है। उसमें वह सामर्थ्य नहीं रहती। मन्त्रोपदेश तो गुरु के द्वारा होना चाहिए, और वह भी प्रणत शिष्य को, इस पर एक कथा है—

एक शिष्य ने गुरु के पास पहुँच कर बड़े विनय के साथ निवेदन किया कि मुझे मन्त्रोपदेश दीजिए उस पर गुरु ने कई दिन तक टाला और अन्त में कई उपदेशों के पश्चात् उसे मन्त्र की दीक्षा दी, एक दिन वह शिष्य गङ्गा स्नान के लिए गया तो कई व्यक्तियों को गुरूपदिष्ट मन्त्र का उच्चारण करते हुए देखा उस पर शिष्य को आश्चर्य हुआ और उस ने गुरु से कहा कि गुरुवर जिस मन्त्र के लिये आप इतनी महत्ता बता रहे थे और उसे अमूल्य सिद्ध कर रहे थे उसे तो मैंने उच्च स्वर से उच्चारण करते हुए कई व्यक्तियों को गंगा तट पर देखा। अन्त में गुरु समझ गए और उन्होंने एक चमकदार पत्थर उस शिष्य को देते हुए यह कहा कि तुम इसे ले जाओ और मूल्य आँका कर ले आना। निदान शिष्य बाजार में गया और भिन्न-भिन्न रूप से लोगों ने उसका मूल्य आंका। अन्तिम जौहरी ने तो उसे अमूल्य सिद्ध कर दिया, इसी दृष्टान्त से गुरु ने शिष्य को सारी बातें समझाईं और वह ज्ञान हीन शिष्य भी समझ गया। पर............

अतः इसका निरीक्षण भी सभी को करना परमावश्यक है।

(चित्र का विषय)

अब रही श्री मद्वल्लभाचार्य के चित्र को पधराकर झारी भरना या मेवा भोग धरना, बालकों से आरती कराना, और फिर उन का तिरोभाव करना भी पुष्टिसम्प्रदायानुकूल नहीं है। इस सम्बन्ध में बहुत लिखा जा सकता है परन्तु समयाभाव है, यहां

भगवद् स्वरूप नित्य ही होता है और जिसको पुष्ट या जिसका आविर्भाव किया जाता है। फिर उसका ही तिरोभाव कर आविर्भाव नहीं करते।

इस पर जो जगदीश के यहां की कथा प्रसङ्ग दे कर बताई गई है कि जब आचार्य चरण प्रसाद की स्तुति करते हुए श्रीजगदीश के मन्दिर में अधिक समय तक बिराजे रहे तो इस कीर्त्तन समाज में उनके विराजने में क्या आपत्ति है, यह तो आचार्य के सोचने की बात थी, हम तो आचार्य को अधिक समय तक विराजमान कर मार्ग सिद्धान्तानुसा अधिक श्रम नहीं दे सकते।

मेरे पूज्य गुरु श्री पुरुषोत्तम जी चतुर्वेदी जी ने तथा सम्मान्य माधव शास्त्री जी ने जो मन्त्र कीर्त्तन के सम्बन्ध में सम्मति दी है और उत्कर्षासहिष्णु आदि शब्दों का प्रयोग किया है इसमें रुग्णावस्था या कोई रहस्य मय बात अवश्य है अन्यथा उनकी लेखनी भी से भी ऐसा नहीं होता।

दि० १५-१-५६

❀ श्री बालकृष्णो जयति ❀

पुष्टि मार्ग का ५०० वर्ष का गौरव पूर्ण इतिहास

(लेखक—श्री रमणलाल ज्येष्ठाराम शास्त्री शुद्धाद्वैत सा. रत्न)

इस अष्टाक्षर महामन्त्र का जप एक प्रकार का यज्ञ है। और कलियुग में जप यज्ञ को सबसे बड़ा माना है "यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि" श्री गीता जी १०-१५ यज्ञ में दी जाने वाली आहुतियों से यह जप यज्ञ ही अच्छा है। पुष्टि मार्ग में यज्ञ का प्रकार ही बदल दिया गया. और इस तरह के जप को ही ज्यादह महत्व दिया गया।

एकान्त एकाग्र मन से और चित्त की स्थिर धारणा द्वारा किया जाय तो इसके द्वारा मन और चित्त की शुद्धि होती है। एवं उसके पश्चात् क्रमशः अन्तः करण में दैवी भावना का संचार होकर अपना हृदय प्रभु के आवेश के योग्य होजाता है।

संक्षेप में इस महामन्त्र का रहस्य अत्यन्त गहरा है। यदि श्रद्धापूर्वक इसका जप किया जाय तो लौकिक अलौकिक सब प्रकार की आपत्तियों का इसके द्वारा निवारण हो जाता है। पुष्टिमार्ग (५००वर्ष-पृष्ठ ८५) पुष्टि मार्गीय जीवका सद् व्यवहार प्रभु के साथ होता है, प्रभु के लिये होता है। प्रभु की प्रीति संपा-

दन करने के लिये उन्हीं के सुख के लिये होता है। प्रभु के सिवाय अन्य कोई भी सेव्य उनके लिये नहीं होता है। संसार में रहते हुए भी वह संसारी नहीं है। लौकिक में व्यवहार करते हुए भी वह व्यवहारी नहीं है। वह तो सदा प्रभु के ध्यान एवं सेवा में ही मग्न रहता है।

"चेतस्तत्प्रवणं सेवा" इस श्री महाप्रभु जी की आज्ञा नुसार चित्तका सदैव प्रभु में ही लगाना इसी का नाम ही सेवा है। जो सेवा के समय प्रभु के सिवाय दूसरे लौकिक विचार उत्पन्न हों और चित्त वहां दौड़े वह सच्ची सेवा नहीं गिनी जाती, सेवा से विमुख होना यह महान् आसुरावेश है। इसलिए अन्य संबंध से दूर ही रहना।

पुष्टि मार्ग गुप्त है दिखावे के लिये है ही नहीं। भक्त एवं भगवान् का आन्तरिक एवं ऐकांतिक संबंध दृढ़ कराने का यह मार्ग है भक्त का हृदय केवल भगवान् की ही भावना करे अन्य कुछ भी उसे दीखे नही, उसकी दृष्टि केवल भगवत् स्वरूप को ही यत्र तत्र देखे। भगवान् भी अपने प्रिय भक्त को ही दृष्टि में रखें। इस तरह भक्त और भगवान् का संबंध परस्पर ऐसा होता है कि इसका ज्ञान किसी तीसरे को होता नहीं है। हमारे भगवान् "एवं हम" हमारा पारस्परिक संबंध है उसका ज्ञान दूसरों को कराने की क्या जरूरत है क्या प्रशंसा प्राप्त कराने को! अपनी महत्ता बढ़ाने को यह सब तो बाधक है अपने मुखद्वारा अपने

किये का वर्णन होजाय तो उसमें अहंकार के कारण आसुरावेश होजाता है यह निश्चय ही मानना। अष्ट प्रहर की सेवा विधि में अनवसर में ही नामस्मरण की योजना की गई और समझाया गया कि नामस्मरण यानी यही रसिक शिरोमणि की रसभरी लीलाओं का अवगाहन।

प्रभु संयोग की लीलाओं में तन्मय होने के पश्चात् यानी संयोग रस के अनुभव के पश्चात् विप्रयोग विषद-वियोग रस का भी अनुभव आवश्यक है! जो ऐसा न हो तो जीवात्मा परमात्मा के सम्पूर्ण स्वरूप के आनन्द का उपभोग नहीं हो सका यही करा जायगा इसलिये विरह रसके अनुभव के लिये ही नाम स्मरण की योजना द्वारा उसके प्रत्येक क्षण को मूल्यवान बनाने की उसे सरलता प्रदान की गई उसका ध्येय च्युत न हो जाय लक्ष भ्रष्ट न हो जाय इसके लिए ही स्वरूप सेवा और नाम सेवा की प्रथा चलाई गई है। (पृष्ठ १७२)

कन्हैया लाल कोटेचा
गुजराती से अनुवाद कर्ता—
विद्यारत्न, साहित्य भूषण

७।१ सुखलाल जौहरीलेन
बांसतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता
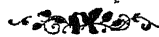
❀ श्री हरिः ❀

एक प्रश्न उपस्थित हुआ है, देखा जाय तो बड़ा गम्भीर प्रश्न है वह यह है कि "जगद्गुरु श्री वल्लभाचार्य चरणों के वंशजों द्वारा श्री कृष्णः शरणं मम ये अष्टाक्षर मन्त्र जो दीक्षा में दिया जाता है उसका ध्वनिवर्द्धक यन्त्रों (माइक्रोफोन) द्वारा अथवा उच्चस्वर से भगवन्नाम कङ्कीर्तन में लाना उचित है या नहीं ?" इस प्रश्न के साथ २ इसके समर्थन में तथा निषेध में श्री आचार्य्यों के प्रमाण तथा विद्वानों की सम्मतियाँ भी देखने में आईं। नवरत्न ग्रन्थ में "तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम। वदद्भिरेवं सततं स्थेयमित्येव मे मतिः" अर्थात् सर्वभाव से श्रीकृष्ण मेरा रक्षक है ऐसा कहते हुए निरन्तर रहना चाहिये ऐसी मेरी बुद्धि है। ये श्रीवल्लभाचार्य्य चरण आज्ञा करते हैं। इस पद्यान्तर्गत "वदद्भि" तथा श्री हरिरायजी महाराज के बचनामृत में कहे हुए "वक्तव्यः" एवं शिक्षा पत्र में "अष्टाक्षर महामन्त्र कीर्तनेन" इन शब्दों को लेकर दो चार वर्ष से काशीस्थ श्रीकृष्ण-प्रिया बेटी जी महाराज की अध्यक्षता में शुद्धाद्वैत महिला मंडल द्वारा जपयज्ञ समिति स्थापित कर शरण महामन्त्र का ध्वनिवर्द्धक यन्त्र से तथा वाद्ययन्त्रों द्वारा उच्चस्वर से कीर्तन करने का काशी कलकत्ता आदि प्रान्त में जोरदार प्रचार किया जारहा है, जिसमें पं० माधव शर्मा जी आदि तन मन से कार्य कर रहे हैं।

अन्य कथा वाचकों के भगवन्नाम कीर्तन की तरह इस शरण मन्त्र का भी कीर्तन करने का यह प्रथम प्रयास है, और इस तरह चलता रहा तो इसका विशेष प्रचार होगा, तथा अन्य कथा वाचक भी शरण महामन्त्र का ध्वनि कीर्तन करायेंगे तो उसमें प्रतिबन्ध लगाया जाय कि अदीक्षितों को शरण महामन्त्र की ध्वनि करने का अधिकार नहीं है ये असम्भव है क्यों कि भगवन्नाम ग्रहण में कौन किस कानून से निषेध कर सकता है, फिर तो शरण महामन्त्र का विशेष प्रचार होगा जिससे आबाल वृद्ध सभी लाभ उठा सकेंगे और शरणमन्त्र की दीक्षा के लिये मन्दिरों में समाधानी आदि के पास भटकते फिरने तथा कम से कम गुरु को श्रीफल भेंट करने के लिये चार आने व्यय करने की भी आवश्यकता नहीं रहेगी, जिसमें जनता को ऐहिक पारलौकिक दोनों लाभ होंगे–ये हुई आज की वस्तु।

वस्तुतः दीक्षामन्त्र सभी सम्प्रदायों में गोपनीय समझे गये हैं और जप आदि का एकान्तस्थल में स्थिर चित्त होकर करने का आदेश दिया है। नवरत्न ग्रन्थ स्थित "तस्मात्सर्वात्मना" इत्यादि पद में श्रीकृष्णः शरणं मम इस शरणमन्त्र के साथ 'सततं वद्‌द्भिः' यह कहा गया है तथा श्री हरिरायजी कृत वचनामृत एवं शिक्षा-पत्र में 'सदा वक्तव्यः 'सर्वदा कीर्तनेन' इत्यादि शब्द जो कहे गये हैं वे जीवोद्धारार्थ एवं सर्वात्मनिवेदन करने वाले भक्तों के लिये सर्वविधि चिन्ता निवृत्यर्थ आचार्यों द्वारा कहे गये हैं जिनका

अर्थ किया है कि श्रीकृष्ण मेरे रक्षक हैं ऐसा नित्य अहर्निश सतत प्रतिक्षण उच्चारण करते रहना चाहिये।

प्रतिक्षण, सतत, सर्वदा इन वाक्यों का उद्घोष पूर्वक या माइक्रोफोन द्वारा घण्टे २ घंटे तक उच्चारण करना या किसी दिन कुछ अधिक समय तक ध्वनि करना यह अर्थ कैसे कर लिया गया है। श्रीमदाचार्य्य चरणों के इन वाक्यों का यह आशय तो सर्वथा नहीं निकलता है कि हे प्यारे वैष्णवों ! यदि आपको सतत सर्वदा प्रतिक्षण शरण महामन्त्र के उत्तारण का समय चाह पीने भोग राग करने तथा व्यापार लेन देन करने, सैर सपाटे करने रेडियो सुनने सीनेमा देखने आदि कारण से न मिले तो निर्धारित स्थान पर निर्दिष्ट समय पर आकर घड़ी दो घड़ी शरण महामन्त्र का माइकक्रोफोन द्वारा सुनकर उच्चस्वर से सामूहिक रूप में बोलते हुए अपने जीवन को सार्थक बनाओ और किसी बात की चिन्ता न करो।

अभी तक तो ऐसा पढ़ने तथा सुनने में आया है यथा- कांशीस्थ विद्वद्वर श्री गिरिधर जी महाराज अष्टाक्षर मन्त्र की व्याख्या में लिखते हैं कि श्री विट्ठलनाथ जी महाराज की आज्ञा है 'सदा जपेत्' सो जप नाम गोप्य को है ताते नाम ऐसे जपिये जो होठ फरके नहीं और शब्द कोई सुने नही काहेते जो श्रीकृष्ण नाम है सो अत्यन्त गूढ़ रसमय पदार्थ है। चारों वेद को परम रहस्य है। श्री स्वामिनी जी तथा आचार्य्य जी को रहस्य महा

अलौकिक अष्टाक्षर महामन्त्र है ताते गोप्य जानिके जप करनो इत्यादि। और भी श्रीव्रजभूषण जी महाराज कृत नवरत्न के धोल में कहा है कि "श्रीकृष्णः शरणं मम" सदा जपो जी न विसारसो पल एक मात्र। तथा अष्टाक्षर निरूपण ग्रन्थ में भी कहा है:—

अहोरात्रं जपेन्नित्यं गुरूणां मन्त्रमुत्तमम्।
तं हि दृष्ट्वा त्रयोलोकाः पूताःस्युः किमु मानवाः॥
मध्ये च सर्वमन्त्राणां मन्त्रराजोत्तमोत्तमः।
इदमेव परैकान्त भक्तिमान् यः सदा जपेत्॥
ऋद्धिः सिद्धिगृहे सत्यं कृष्णतात्पर्यसुन्दरम्।

इत्यादि प्रमाण निरन्तर जप स्मरण आदि करने के लिये देखे सुने गये हैं।

इसलिये सर्बसमुदाय में हारमोनियम तबला किङ्किणी आदि वाद्ययन्त्रों के साथ माइक द्वारा बैष्णवगण अपने २ कार्य से निवृत्त होकर निर्धारित समयपर घण्टे दो घण्टे विद्वान् आचार्य की अध्यक्षता में

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं संमोहः स च विभ्रमः।
यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवं न चिन्तयेत्॥

तथा 'अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः। के अनुसार शरणमहामन्त्र के

स्थान पर भगवद्गुणानुवाद कीर्तन एवं श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। तथा—

श्रीवल्लभ विट्ठल गिरिधारी
श्री यमुना जी की बलिहारी

इत्यादि भगवन्नाम सङ्कीर्तन (नामधुन) करें यह समुचित प्रतीत होता है, और दीक्षित वैष्णववृन्द शरणमन्त्र का निरन्तर जप सब व्यवस्था में करते रहें जिसमें कोई वाह्याडम्बर प्रतीत नहो ऐसी मेरी भाग्यवान् वैष्णवगण से प्रार्थना है। इति शम्।

श्रीमदाचार्य्यचरणकमलचञ्चरीक
१४-१-५६ **गिरिधारी लाल शास्त्री,**
शुद्धाद्वैतविशारद, काव्यतीर्थ:
अध्यापक- श्री गोवर्द्धन संस्कृत कालेज
नाथद्वारा
(राजस्थान)

"अष्टाक्षर महामंत्र के मुद्रक काशीस्थ पं० माधव शर्मा का लेख अष्टाक्षर महामंत्र की प्रस्तावना में-

" शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय एवं पुष्टि मार्ग में "शरण-समर्पण-और सेवा का क्रम निश्चित किया गया है, जिसमें नवधा भक्ति का समावेश हो जाता है। इसलिए हमारे आचार्य श्री के उपदेशानुसार प्रथम-प्रभु की शरण में जाने का आदेश है। जीव प्रभु का अंश है प्रभु से वियोग होने के कारण वह विविध दोष तथा दुःखों से युक्त हो रहा है। आचार्य श्री ने समस्त दोषों की तथा दुःखों की निवृत्ति के लिए एवं निर्दोष बननेके लिए तथा आत्यन्तिक सुख प्राप्ति के लिए भगवान् श्री कृष्ण की शरण जाने की निजाश्रितों को शिक्षा तथा दीक्षा दी है, इसी दीक्षा के अवसर पर आचार्य श्री ने शरण भावना प्रधान अष्टाक्षर महा मन्त्र उपदेश दे कर सदैव शरण भावना रखने की शिक्षा दी है। जीव के दोष मात्र का कारण उसका अहंकार तथा अभिमान है। इस अहंकार का उदय न हो तथा दीनताभाव सदैव सुदृढ़ रहे इसके लिये "श्री कृष्णः शरणं मम" मेरे लिए श्री कृष्ण ही शरणं हैं, आश्रय

हैं अर्थात् वही मेरे सर्वस्व है। मैं दास हूँ प्रभु मेरे स्वामी हैं। इस भावना से दीनता बनी रहती है। तथा अहंकार का उदय नहीं होता। जो आसुरी जीवों में सदैव रहता है। समस्त शास्त्र एवं सन्त महात्मा अहंकारादि आसुर भाव की निवृत्ति के लिए प्रभु के चरण की भावना रखने का उपदेश देते हैं जो अष्टाक्षर महामन्त्र का आशय है।" (इति)

पन्नग हू सुनि मंत्र की राखत सब अब कानि
मनुज होय माने नहीं तासु कहा गति जानि।

(श्री व्यास दास जी)

तस्मात् कृष्ण एव परमो देवस्तं ध्यायेत्
तं रस येत् तं यजेत् तं भजेत्।

(श्री गोपाल तापिनी उपनिषद् मन्त्र संख्या २२)

श्री कृष्णः शरणं ममेति सततं कल्याण पूर्णं कुरु

(रसनाष्टकम्)

❀ श्रीहरिः ❀

श्री तिलकेश शर्मा आनन्दीलाल शास्त्री

अध्यापक भूपालसंस्कृतकालेज उदयपुर

पुष्टिमार्गीय मुख्य धर्म स्वरूप सेवा नामक पुस्तक मैंने देखी इसमें प्रभु सेवा की महत्ता तथा अष्टाक्षर मन्त्र के स्मरण एवं जप का सप्रमाण बड़ा ही सुन्दर प्रतिपादन है।

इसमें यह विषय मुख्यतः विचारणीय है कि गुरु प्राप्त अष्टाक्षर मन्त्र का उच्चस्वर से कीर्त्तन न करा कर स्मरण एवं जप ही करना चाहिये। इस विचार की पुष्टि इस प्रकार होती है कि अष्टाक्षर मन्त्र है मन्त्र शब्द मत्रि धातु से बना है जिसका अर्थ गुप्त बोलना है और मननात्त्रायतेयस्मात्तन्मन्त्रः परिकीर्तितः। इससे भी मन्त्र शब्द मननार्थक ही बनाया गया है श्रीकृष्णः शरणं मम इसके मन्त्र होने से ही जपेत् स्मरेत् ये ही शब्द अधिक रूप में प्रयुक्त हुए है। अतएव गो० श्री गोकुल नाथ जी महाराज ने भी इसे गुप्त रखने का ही आदेश दिया है और कलि में शिष्टाचार की ही मुख्यता बताई गई है जैसा कि

"साधूनां समयश्चापि प्रमाणं वेदवद् भवेत्।

"कलौतस्य विशेषतः प्रामाण्य बोधनाच्च॥

इत्यादि उपदेश शंका निरासवाद में निर्दिष्ट है। अतः अष्टाक्षर का उच्चस्वर से कीर्त्तन कराना साम्प्रदायिक परम्परा के तथा श्री गोकुलनाथ जी महाराज के वचनामृत के विरुद्ध है।

वदद्भिः, कीर्तनेन, इन पदों से भी उच्चस्वर से कीर्त्तन कराना सिद्ध न होकर स्पष्टोच्चारण करना ही सिद्ध होता है। क्यों कि वद धातु-स्पष्टोच्चारण करने के अर्थ में ही है। अतएव वद धातु का कीर्त्तन अर्थ में कहीं भी प्रयोग नहीं देखा गया है। वदद्भिरेव सततम् ” यहाँ का 'सततम्' पद भी इसी बात को सिद्ध करता है क्योंकि वद धातु का उच्च स्वर से कीर्तन करने में भी स्वारस्य मानने पर अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति आवश्यक होगी। और वेसी उपस्थिति में निरन्तर उन व्यक्तियों को समीप रहने का सम्भव न होने से सतत उच्चारण करना भी नहीं बन सकेगा। अतः 'वदद्भिः' इस पद का तात्पर्य यही है कि कार्यों में संलग्न रहते हुए भी अष्टाक्षर का निरन्तर उच्चारण करते हैं।

यहाँ के कीर्तन शब्द का अर्थ भी श्री मदाचार्य—चरणोक्ति वदद्भिः—इस पद के अर्थ के अनुसार ही करना चाहिए। कीर्तन शब्द का अर्थ कोष में कथन बताया गया है। जैसा कि “जन्म नाम कीर्तनं मम” में आता है। कीर्तन का कहना अर्थ मानने पर ही वद के साथ एकार्थता हो सकती है अन्यथा नहीं। अतः यहाँ कीर्तन शब्द का उच्च स्वर से उच्चारण करना अर्थ युक्त प्रतीत नहीं होता।

उपर्युक्त विचार की पुष्टि इस प्रकार भी हो सकती है कि जप धातु स्पष्टोच्चारण अर्थ में भी है। इसीलिए "यदुच्च नीच स्वरितैः स्पष्ट शब्द वदक्षरैः। मन्त्र मुच्चारयेद्व्यक्तं जप यज्ञः स वाचिकः" से प्रतिपादित—

वाचिक जप भी माना गया है। इस प्रकार स्पष्टोच्चारणार्थक जप शब्द की एवं कीर्तन शब्द की एकार्थता होने से कीर्तन में भी वाचिक जप के कुछ नियम स्वीकार करने होंगे, जैसे वाचिक जप के मानने पर भी "वाचिकेऽप्युच्चकैर्निषेधमाह शंखः—नोच्चेर्जप्यं बुधःकुर्यात्सावित्र्यास्तु विशेषतः से उच्चस्वर से उच्चारण करना निषिद्ध है। वैसे ही अष्टाक्षर के उच्चारण में भी उच्च स्वर से कीर्तन करना युक्त नहीं है।

करिये श्री सर्वोत्तम रस पान।
को कवि ऐसो करे प्रशंसा श्रीमुख करत बखान।
इक इक अक्षर है अधरामृत गुप्त रहस्य गुन गान
अर्ध निमेष विलंब न करिये रैन दिवस आठौ याम
रसिक प्रीतम जाके रंग रंगिये सोहे भक्त निधान (१)

❀ श्रीनाथजी ❀

॥ श्री नवनीतप्रिय जयति ॥

बीकानेर वाली श्रीकृष्णाबाई के विचार

कृष्णादासी के भगवत् स्मरण,

विनती यह है कि पुष्टिमार्ग में ब्रह्मसम्बन्ध होवे है, भक्ति को दान होवे है। दास के गुण कहा जिनमें दासपने के गुण होवे वही अङ्गीकृत होवे। जिस जगह वादविवाद होवे है उस जगह से दास दूर रहे, पुष्टिमार्ग किस कूं कहते हैं। पुष्टिमार्ग में सब सूँ मित्रता होनो फल है। "मूल पुरुष जी" देख लो, श्रीमहाप्रभु जी को मेंड यह कि अष्टाक्षर पंचाक्षर को गुप्त ही जप कर्यो जावे है।

और ग्रंथन को यह सिद्धान्त है कि भगवान् के नाम के कीर्तन करने अष्ट सखान की वाणी के कीर्तन करने येही आपका आज्ञा है। अपनी संप्रदाय की सम्मति सूँ भजन कर्यो जाय वादविवाद करनो यह अपनो काम नहीं है। श्री घोषसी मन्तनी सब सखीन सूँ सम्मति लेकर के वेणुगीत, युगलगीत दान कियो गान कियो ये गोपी जन को मार्ग है यह अहंकार को मार्ग नहीं है। और दीनता को मार्ग है। दीनता सूँ सेवा स्मरण

सत्संग वार्ता प्रसंग होवे तब फली भूत होवे । जो आचार्य्य चरण अथवा आपके वंशज आज्ञा करे वो बहुजी बेटीजी एतन्मार्गी वैष्णव कू माथे पे चढाय के वाही समान सेवा स्मरण करे महाप्रभु जी के वंश के बालक भगवद्रूप हैं । शास्त्रार्थ अन्यमार्गी के संग किया जाता है । अपनी सम्प्रदाय में आपस में ही रीति नहीं है अब बिशेष कहा लिखें सब जानते ही हो कि यह मार्ग दीनता का है । दीन कू कोई कैसे ही कहें कोई गाली काढ़े कोई थूँके, कोई मूते, कोई निन्दा करे कोई चोर कहे, कोई खोटी बदनामी करे दीन कोई सूँ नहीं बोले, कोई के संग वाद नहीं करे एकादश स्कंध में लिख्यो भिक्षु गीत देखलो अगर सम्प्रदाय को मर्म जानो तब तो दीन हो जाओ और उपदेश करता बनो तो मरजी आपकी यही वैष्णवन सूँ बिनती है ।

आपकी दासी—

कृष्णादासी

२०१२ का पोष शुक्ल ३ सोम

ता० १५-१-५६

गो० श्री १०८ श्री गोपाललालजी महाराज के सेवक पं० हरिश्चन्द्रजी गहवरबन

—❖:❀:❖—
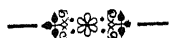
मेरी समझ नितान्त लघु है पर शास्त्रानुसार सर्वत्र यही प्रमाण मिलै है कि मन्त्र गोपनीय है धात्वर्थ भी यही होता है कि (मन्त्रि गुप्त भाषणे) मन्त्र का उच्चारण मन में ही करै उच्चस्वर से नहीं यामें प्रमाण और भी महानुभावन ने बहुत से दिये हैं वासें मैं अब कोई भी प्रमाण न देकर या लेख को बढ़ानों नहीं चाहूँ मेरी यही सम्मति है कि या अष्टाक्षर मन्त्र कों या प्रकार सर्व समक्ष उच्चस्वर से कीर्त्तन की रीति से ध्वनि से सब के संग में नहीं बोलनों चाहिये और श्री चित्रजी को भी पधरा कर उनकी आरती उतार कै पीछे उनमें लौकिक चित्रवत् वर्तनों अर्थात् सर्वदा ईश्वर न माननों ये पुष्टि रीति से विरुद्ध है पुष्टिमार्ग में चित्र नहीं किन्तु साक्षात् श्रीकृष्ण ही या रूप से पधारे हैं क्योंकि वैसे तो श्रीकृष्ण दुर्लभ हैं सो जैसे श्री कृष्ण देव दुर्लभ होते भये भी भक्तां के लिये सुलभ होवे को मनुष्य रूप धारण कर पधारें हैं तैसे ही अब या समय हम को सुलभ होने के लिये चित्र रूप बन करें पधारे हैं पर हैं वही साक्षात् श्रीकृष्ण ही नकि लौकिक वस्तु, यासें मेरी सम्मति यही है कि या प्रकार से चित्रजी में भी नहीं वर्तनों।

ह० पुष्टिमार्गानुगामी पं० हरिश्चन्द्रजी शास्त्री

मिती पूष सुदी ११ मंगलवार सं० २०१२ श्रीगहबरबन बरसाना।

|

परम भगवदीय सेठ श्री गोवर्द्धन दास जी त्रिविक्रम दास जी श्याम घाट मथुरा वालों ने अपने यहाँ की प्राचीन लिखित पुस्तक से निकाल कर यह वार्ता दी तथा आप ने अपने प्रतिक्षण लेने में आने वाले अष्टाक्षर महामन्त्र को अत्यन्त गोप्य रखने के लिये आग्रह किया है।

(वार्ता का अंश)

तब चाचाजी ने वा स्त्री की बहुत आर्ति जानिकें दूसरी स्त्री सों चाचाजी कहे जो यह स्नान करि दूसरे नये कपड़ा पहरिकें काहूकों छुवे नाही या प्रकार आवें तव हम याकों वैष्णव करें तव चाचाजी के बचन वाकों समुझाय कें कहे तव वह स्त्री स्नान करि नये वस्त्र पहिनकें अपरस में चाचाजी के पास आई तव चाचाजी ने वाकों नाम सुनायो और वाकों समझाय कें कहें जो यह नाम अष्टाक्षर तू स्नान करि नये वस्त्र पहिरकें अपरस में नित्य नियम सों लीजियो। (लिखित २५२ की वार्ता पन्ना १६ सं १८६६ पौ० सुदी ७ रविवार की प्रति।

(अष्टाक्षर नाम मंत्र में गोप्यभाव)

एक कन्या वैष्णव हती सो वा वैष्णव की कन्या को विवाह एक राजा के बेटा सों भयो हतो। सो तव कन्या ने अपने

मन में विचार कियो जो या राजा के मुखते श्री भगवन्नाम सुनिवे में आवे तो मैं या राजा के पास लंगर जाऊँगी नातर नाहीं, सो वा कन्या ने अपने मन में विचार कियो तब विवाह भये पाछे कन्या राजा के घर गई सो वा राजा को खवास नित्य रात्रि को शैया विछावे सो एक तो पलंग पै बिछोना करें और एक भूमि पै विछोना करे सो तव समय भये पाछे खवास रानी को महल में लावे। तव वह राजा पलंग ते उठकें वा रानी को बहुत सन्मान करें सो जैसें राजा की रीति होत है सो प्रथम तो भूमि पै आयकें बैठी सो ता पाछें वह राजा पलंग के ऊपर सोवै और वह रानी तो भूमि पर विछोना करे सो सोवै और राजा के मुखते भगवन्नाम रानी नें न सुन्यो सो ऐसे करत वह राजा की रानी राजा के पलंग पर नाही आवै सो एक दिन वा राजा को तो महानिद्रा आई सो वा निद्रा में राजा के मुख से भगवन्नाम को उच्चार भयो सो तब रानी ने राजा के मुखतें भगवत् नाम सुन्यो सो सुन के राजा के पलंग पै बैठकें वह राजा के पांव दावन लगी सो तब वह राजा जाग उठ्यो सो तब राजा ने रानी सों कह्यो जो आज तेरे कहा है जो आज मेरे पांव दावत है तव रानी ने राजा सों कह्यो जो में मनोरथ करत हती सो मनोरथ श्री ठाकुर जी ने पूर्ण कियो ताते आज में तुमारो स्पर्श करत हूँ। सो तब ऐसें रानी ने राजा सों कह्यो।

सो तव अपने पलंग को बिछोना राजा ने दूर करके आप भूमि के ऊपर आय बैठ्यो सो तब रानी ने राजा सों कह जो

मेरो मनोरथ हतो जो राजा के मुखते भगवन्नाम सुनोंगी सो तब राजा के पलंग पर जाऊँगी सो आज तुमारे मुखते भगवन्नाम निकसों सो मैं सुन्यो जो आज मेरौ मनोरथ पूर्ण भयो सो ताते मैं आज आयकें तुम्हारो स्पर्श कर्यो सो तव राजा ने कह्यौ जो आज मेरे मुखते भगवन्नाम निकसि गयो सो ऐसें कहत ही वा राजा को ब्रह्माण्ड फट कें प्राण निकसि गयो। २५२ की वार्ता पन्ना ३६० सं० १८६६ पौ० सु० ७ रवि।

(श्रीवल्लभ पुष्टि प्रकाश से उद्धृत)

पृष्ठ १ से ३ तक सेवा की वात्सल्यता संक्षिप्त में लेनी

सदा सर्वात्मना सेव्यो भगवान् गोकुलेश्वरः
स्मर्तव्यो गोपिका वृन्दैः क्रीडन् वृन्दावने स्थितः ५७ पृष्ठ २

जप पाठादिक सेवा के अवकाश में करिये जप समय काहूसों संभाषण न करिये अन्तः करण भगवल्लीला विषें नैंन मूंदिकें माला सों जप करिये।

जपं सर्वोत्तमं पूर्व मष्टाक्षरमतः परम्
महामंत्रस्ततो जप्यस्ततो नामावली शुभा १२७ पृष्ठ ४०

जप समय लौकिकासक्ति विषय वासना पर चित्त न रखिये श्रीमदाचार्य जी के चरणार विन्द पर चित्त रखिये।

श्री आचार्य महाप्रभु जी कृत ३२ लक्षण से उद्धृत

अपनो मंत्र काहू के आगे प्रकाश न करनो अष्टाक्षर मन्त्र तथा पञ्चाक्षर मन्त्र तथा द्वादशाक्षर मन्त्र को दीनता सो गोप्य जप करनो, बाल लीला के पद श्री जी के आगे प्रसन्नता सूं गावने। श्री ठाकुर जी को जप सदैव करनो सो और काहू सों कहे नाहीं। जो अपने जप काहू सों कहै नाही जो कहै तो देह के विषें अन्तराय होय जप किये को फल वाकुँ होय सो जाको जप कियो वृथा होत है। जो वैष्णव होय सो अपनो गुरु मन्त्र अष्टाक्षर पञ्चाक्षर काहू सों कहै नहीं। वैष्णव को अवैष्णव से मिलवो योग्य नहीं जैसो बहिर्मुख के मिलाप ते होत है तैसो अवैष्णव के मिलाप ते होय दोऊ को सम करि जानें। (इत्यादि)

श्रीमद् दीक्षित गो० श्री गोपालात्मज श्री गिरधर जी कृत नाम समर्पण मन्त्रार्थ की टीका

जो मैं आप को दास हूँ—जो नाम मन्त्र दोउन को मिलायकें जप करनो सो काहे ते जोनाम मन्त्र ते सात भक्ति सिद्ध होत हैं सो अब कहत हैं।

जो जब जीव ने नाम सुन्यो सो तब ही श्रवण भक्ति सिद्ध भई, पाछें जप समय भगवद् ध्यान करन लाग्यो सो तब स्मरण भक्ति सिद्ध भई। और जप और ध्यान किये पीछे सेवा को अधिकार भयो सो तब पादसेवन भक्ति सिद्ध भई। फिर समय के नियम सों सेवा करन लग्यो सो अर्चन भक्ति सिद्ध भई जो अर्चन

कहिये पूजा को जामें काल को नेम है जो सेवा में काल को नियम नहीं है। जो जप सेवा करिकें दण्डवत् करन लाग्यो सो तव अभिवन्दन भक्ति सिद्ध भई सो तव शरण को मन्त्रार्थ ज्ञान भयो सो जव भगवद् आश्रय सिद्ध भयो सो तब दास्य भक्ति सिद्ध भई। सो सख्य और आत्म निवेदन सो ब्रह्म सम्बन्ध ते सिद्ध भई। जो सख्य और मित्रता सो उभय लिये है। सो ताते मित्रता करिबेकी होय सो तब ही मित्रता बने, सो पवित्रा एकादशी की अर्द्धरात्रि कों प्रकट होयकें श्रीमदाचार्य जी कें जीवन कों ब्रह्मसम्बन्ध देवे की आज्ञा किए, सो ताते सख्य भक्ति सिद्ध भई, जो मन्त्रार्थ विचारेते आत्म निवेदन भक्ति सिद्ध भई। जो कुछ पदार्थ है सो सब श्री भगवान् को है। सो तब ममता निवृत्त भई भगवदीय करिकें परि समाप्त सर्व पदार्थ भए सो तब यह मुख्य स्वरूप की सेवा को अधिकारी भयो ताते ये दोउ मन्त्र मिलाय के जप करने दोऊ गुप्त हैं और जप करती समय युगल स्वरूप श्री कृष्ण को ध्यान हृदय में करनो ऐसी रीति सूं हमेशा जप करनो। टीका सम्पूर्ण।

श्वास श्वास में कृष्ण जप वृथा श्वास मत खोय।
ना जाने या श्वास को आवन होय न होय॥
शिक्षा स्यान सनेह रस उत्तम जन को लागे।
सौ युग पानी में रहे तजे न चकमक आगे॥

(श्री व्यास दास जी)

* श्री गोकुलेश के हास्य प्रसङ्ग *

कोई एक समय श्रीजी को श्री देवकीनन्दन जी ने प्रश्न किया कि राज पूर्व के जो जीव शरण आये हैं वह और अभी के आये हैं वह एक ही हैं कि पृथक् पृथक्।

तब श्रीजी ने कहा कि पूर्व में अङ्गीकार किए हैं वह और अभी किए हैं वह रहते तो साथ ही हैं।

तब पूछा कि उसका तारतम्य किस तरह जाना जाय तब श्रीजी ने कहा कि पूर्व के भगवदीय होंगे विषय रहित होंगे और सङ्ग से दूर रहेंगे। श्री यशोदानन्दन पूर्ण पुरुषोत्तम उनके हृदय में ही रमण करते हैं। उनको अचल आनन्द है उनकी व्यामोह लीला पुष्टिस्थ हीं होती। उनकी दशा स्वाविक होती है। उन्हें कोई भी सिखाता नहीं है।

अभी के जो आए हैं वह स्नेह से रहित होंगे, विषयाशक्ति होंगे और पुत्र पौत्रादिकों के ऊपर आसक्त होंगे। वह बात बात में पराधीन बनेंगे और भगवदियों से विरोध करेंगे। उन में परमा बुद्धि की हानि होगी। जो कुछ सेवा करेंगे और व्याभोह नेलोल लीला का गान करके जीवेंगे। उनको आनन्द एवं पुष्टि भाव उत्पन्न ही नहीं होगा और मर्यादा की लीलाओं का गान करके मर्यादा भक्त के साथ ही वह प्रसन्न होंगे।

यह उभय प्रकार की लीला सृष्टि यहीं है भाव द्वारा जाना जा सकता है। (प्रसङ्ग ३३)

एक समय श्लोक कह कर भाव जताया कि पात्र के विना जो भगवद् बार्ता करें तो जिस तरह लघु आहारी को ज्यादा परोस दें वह व्यर्थ जाय इसी तरह हानि होती है।

एक समय आज्ञा की कि बात जहाँ तक मन में है वहीं तक अपनी है। बाहर निकलते ही पराई हो जाती है।

मीमांसा प्रकरण

इस प्रकरण में शास्त्रीय एवं परम्परागत मन्त्र
सम्बन्धी भावनाओं को सुचारू रूप से विशद
व्याख्या की गई है। और यह प्रकाश में
लाया गया है कि पुष्टि-मार्ग
सेवा मार्ग है।

* श्रीहरि *

अष्टाक्षर मन्त्र और श्री मद्वल्लभाचार्यजी

इस पवित्र भारतवर्ष में श्रीमद् अखण्ड भूमण्डलाचार्य वर्य जगद्गुरु करुणा वरुणालय श्रीमद् भगवन्मुख वैश्वानरावतार दैवी जीवोद्धार प्रयत्नात्मा श्रीमद् वल्लभ-प्रभु ने प्रकट होकर अपने अतुल परम वैदुष्य का प्रदर्शन करा कर शुद्धाद्वैत निर्गुण भक्तिमार्ग स्थापन द्वारा विज्ञाविज्ञ समग्र जगत को प्रभावित कर अतिकृपा दृग्वृष्टि से जहाँ तक भूतल पर विराजे वहाँतक अनेक जीवों का उद्धार किया, एवं तदर्थ सतत प्रयत्न करते तत्तज्जीवों के हितार्थ अनेक ग्रन्थों का निर्माण भी किया, जिनका कि पठन मनन करके तदनुसार चलने वाले आधुनिक जीवों का भी फल प्राप्ति में सन्देह नहीं रह जाता, आप श्री ने सबसे प्रथम जीवों का कर्त्तव्य भगवच्छरण में जाना बताया और इसके लिये श्रीकृष्ण अष्टाक्षर मंत्र स्वीकार कर उपदेश किया, क्यों कि आपको विभूत्यादि में जीवों की प्राप्ति कराना अभीष्ट न होकर सदानन्द पुरुषोत्तम में ही प्राप्ति कराना इष्ट है अतएव पृथक् शरण मार्गोपदेश किया।

गौमतीय तंत्र प्रथमाध्याय में कहा है कि "गाणपत्येषु शैवेशु तथा शाक्तेषु सुव्रत, सर्वेषु मन्त्र वर्गेषु वैष्णवं श्रेष्ठ मुच्यते। वैष्णवेषु च मंत्रेषु कृष्ण मंत्राः फलाधिकाः।" अर्थात् गणेश, शिव, शक्ति, इन सब मंत्रों में विष्णु मंत्र श्रेष्ठ है और विष्णु के मंत्रों में कृष्ण मन्त्र में फल अधिक है, इसी प्रकार "कृष्ण मंत्र विहीनस्य पापिष्ठस्य दुरात्मनः। श्वानविष्ठा समंचान्नं जलं च मदिरा समम्। इत्यादि प्रमाणों से श्रीकृष्ण मंत्र सर्व श्रेष्ठ है अतः वल्लभ सम्प्रदाय में इनके वंशजों द्वारा अष्टाक्षर का उपदेश अद्यावधि चला आ रहा है। यद्यपि वार्ता ग्रन्थ देखने से मालूम होता है कि कुछ वैष्णवों को भी इस (अष्टाक्षर मंत्र) के उपदेश की सत्परिपन्थियों के अभाव प्रदेश में आज्ञा थी। किन्तु वहाँ यह भी उल्लेख मिलता है कि पुनः आचार्यों द्वारा उपदेश कराया गया था, जब से अभी तक वंशजों द्वारा ही उपदेश की प्रथा चली आ रही है, अन्य द्वारा नहीं, बहू बेटियों द्वारा मन्त्रउपदेश की प्रथा कब से चली इसका पता नहीं। इसी प्रकार चौरासी वैष्णवों की वार्ता से यह भी प्रतीत होता है कि अष्टाक्षर मंत्र का उपदेश स्नान कराने के बाद ही आचार्य करते थे अब जैसी तैसी अवस्था में दूध मुँहे बच्चों को भी उपदेश करने की प्रथा कब से प्रारम्भ हुई इसका भी पता नहीं चलता, इस प्रकार की प्रथा में मर्यादा विरुद्ध सी प्रतीत होती हैं। अतः विचार करने का अवसर मिलता है। श्रीमद्भागवत में राजा निमि और नव योगेश्वर ऋषियों के सम्वाद में निमि ने प्रश्न किया कि हे भगवन् यह पुरुष ईश्वरी माया को कैसे तरे, क्योंकि पुरुष स्थूल और मन्द बुद्धि वाला है

इसके उत्तर में कहा कि जितने ये सब पशु पुत्र, धन, गृह, ग्राम स्त्री, कुटुम्ब परिवार जो कुछ है सब चल है, इसलिये सद्‌गुरु की शरण जाकर भागवत धर्म सीखे और सर्व कर्मों का समर्पण हरि के लिये करे, सबसे मन को रोके साधुओं का संग करे तो ममता और कपट रहित होकर माया को अवश्य तर जाय। आदित्य पुराण धर्माख्यान में सूत जी का वाक्य है कि जिनसे भगवान का अनन्त शरण सिद्ध हो उन धर्मों को कहता हूँ, जो नारदादिकों ने गान किये तथा सर्वोत्कृष्ट हैं; यह मनुष्य सद्‌गुरु के शरण जाकर उनसे भागवत धर्म सीख कर और सर्व सांसारिक धर्मों से मुक्त बंधन होकर यथेच्छ हरि चरण स्मरण करता विचरे, फिर आगे कुछ संन्यास के नियम कह कर "वैष्णव, ब्राह्म, हर, ये तीन आश्रम भेद कहे फिर जो जिस आश्रम में हो वह वही चिह्न धारण करे और विद्वात् दोष वर्जित वैष्णव आचार्य पद संस्थित पुरुष को गुरु बनावे, इसके बाद महामंत्र पञ्चाक्षर का प्रकार कहा इसी प्रकार शाण्डिल्य में भी लिखा है "अतएव "यथा देवे तथा गुरौ, श्रुति वाक्यानुसार सद्‌गुरु में भी देव तुल्य भक्ति करनी चाहिये, जिस प्रकार पुष्टिमार्गीय सेवा में क्षण क्षण में श्री ठाकुरजी के सुख का विचार (कहीं उनको श्रम न होजाय,) रहते हैं और अपने शरीर का सुख नहीं विचारते हैं इसी प्रकार सद्‌गुरु की सेवा भी की जाती है, तभी तो पद्मनाभ दास आदि भगवदीयों नें श्रीमदाचार्य जी को श्रम न हो जाय इसलिये अपना धर्म गहने रख कर व्यौपारी का लुटा द्रव्य दे कर परवारा

ही उसे विदा कर दिया था। सेवक धर्म नहीं रहता यदि सेव्य को श्रम हुआ तो, सेव्य दीन जन पर कृपा करके तदर्थ कुछ करते हैं तब उसे हर्षित हो करते हैं इसलिये उसे श्रम नहीं कह सकते, शास्त्रों में भी यही आज्ञा की है इसलिये सद्गुरु का महत्व जान कर इनके द्वारा भगवच्छरण मंत्र का सतत जप और स्मरण करना परमावश्यक है, (एवं चित्ते सदा भाव्यंवाचा च परिकीर्तयेत्)

अष्टाक्षर मन्त्रार्थः—

उपदिष्ट श्री शब्द स्वामिनी वाचक है। कृष्ण शब्द का श्रुत्यनुसार अर्थ (कृषिभू वाचक शब्दो ण श्च निर्वृत्ति वाचकः, तयो रैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इ त्यभिधीयते) कृषि विलेखने शासन से कृष्ण शब्द सिद्ध होता है। धात्वर्थ अनेक होते हैं इसीलिये यहाँ सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णाया क्लिष्ट कर्मणे) इस श्रुत्यनुसार कृष्ण शब्दार्थ सच्चिदानन्द रूप ही है कृषः शब्द भू वाचक है अर्थात् भू धात्वर्थक है अतः सत्पद का लाभ हुआ और ण शब्द का अर्थ, निर्वृत्ति आनन्द को कहते हैं क्यों कि प्रकृति प्रत्यय का समान अर्थ होता है। इसमें प्रत्ययार्थ प्रधान होता है अतः आनन्दमात्र कर पाद मुखोदरादि इत्यादि प्रमाण से सदानन्द कृष्ण शब्दार्थ होता है। अतएव श्री हरिरायजी ने भी सदानन्दं सदानन्दं सदानन्दं सदा जपेत् ऐसा कहा है। अब किसी को यह संदेह हो कि अष्टाक्षर पंचाक्षर मन्त्र तो आपके सम्प्रदाय में प्रचलित हैं उनमें मन्त्र लक्षण नहीं हैं और मन्त्रोपदेश आदि की

जैसी रीति होनी चाहिये वह भी तुमारे यहाँ देखने में नहीं आती और न तुम्हारे मन्त्रों का किसी शास्त्र में उल्लेख ही है, इसका विशेष उत्तर तो, प्राभंजन में लिखा है किन्तु थोड़ा यहाँ भी लिखा जाता है सुनोः—मन्त्र दीपिका में लिखा है कि ऋषि देवता छन्दो न्यास ध्यान युक्त जो मन्त्र होता है उसे ही मन्त्र कहते हैं। जिस प्रकार लोक में राज्य सप्तांग युक्त होता है उसी प्रकार छन्द ऋषि देवता बीज न्यास ध्यान पल्लव, ये सप्ताङ्ग युक्त मन्त्र भी होते हैं। यहाँ विचारणीय विषय यह है कि यह लक्षण तीन विशेषण युक्त है अथवा एक ही है, अथवा चार लक्षण युक्त है। यदि तीन विशेषण युक्त हो वही मन्त्र यह मानते हों तो तीन विशेषण "निघण्टुसंज्ञर्णोधृत ऋषि छन्द, ये जहाँ होंगे वहीं मन्त्रत्व होगा, तब" भो उत्तिष्ठ पुरुष किम् स्वपिसि भयं में समुपस्थितम्, इस मन्त्र में उक्त तीनों लक्षण नहीं हैं, इसलिये इसे भी मन्त्र मत मानों कदाचित् कहो कि तीर्थागतं, यह चतुर्थ लक्षण तो हैं, तब सुनो इस मन्त्र के देवतादि उद्धारादि कहीं देखने में नहीं आये। और "इट इटि मुटिका कट मुण्ड स्वाहा" यह सर्व मङ्गला मन्त्र है, यद्यपि इष्ट वादिनी का मन्त्र तन्त्र राज में हैं और वहाँ इन दोनों का उद्धार भी है। तथापि ऋष्यादिक तो नहीं हैं और तुम मन्त्र मानते हो, अतः ये लक्षण सामान्य हैं विशेष नहीं, यदि कहो कि चतुर्थ लक्षण तो सर्वत्र है, तब तो प्रकृत में भी चतुर्थ लक्षण विद्यमान है ही इसी प्रकार बौद्ध सावर के मन्त्रों में भी लक्षण नहीं हैं, तब उनको क्यों मन्त्र

मानते हो, कदाचित् कहो कि प्राचीन हैं और गुरु परम्परा प्राप्त होते हैं इस लिये मन्त्रत्व मानते हैं, और आपके मन्त्रों में कोई लक्षण नहीं मिलता कदाचित् कहो कि हमारे यहाँ दोनों मन्त्र गुरु परम्परा प्राप्त हैं और चतुर्थ लक्षण भी मिलता है तो यह भी नहीं कह सकते। आपके मन्त्र गुरु परम्परा प्राप्त नहीं हैं ये तो स्वयम् आचार्य द्वारा ही प्रकाशित किये गये हैं इसलिये तुम्हारे मन्त्रों में मन्त्रत्व नहीं है. इसके उत्तर में हमारा यही कहना है कि यद्यपि हमारे मन्त्र आचार्य प्रकाशित ही है और चार अक्षर मन्त्र के नहीं हैं, तथापि मन्त्रत्व का निषेध नहीं का सकते, अन्यथा जिसने पौराणिक मन्त्र हैं उनको मन्त्रता कैसे हो सकती है, कदाचित् कहो कि यह मन्त्र नहीं कह सकते) श्रीमद्भागवत पंचमस्कन्ध में कहा है कि हिरण्मय खण्ड में कूर्म भगवान् है उनकी सेवा अर्चना पितर करते हैं और इस मन्त्र का जप करते "ओ३म् नमो भगवते अकूपाराय सर्व सत्व गुण विशेषणाय नोपलक्षिता वस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमो वस्थानाय नमस्ते" इस मन्त्र में मन्त्र लक्षण नहीं है, परन्तु इसे मन्त्र माना है और पुराणान्तरों में भी व्रत तीर्थादिकों के प्रकरण में अनेक मन्त्रों का उल्लेख है। मन्त्र शास्त्र में कहा है कि सम्प्रदाय हीन मंत्र देने से मंत्र निष्फल एवं देव ऋषि छंद हीन मंत्र भुजङ्गम तुल्य होता है। और न्यास ध्यानादि रहित मन्त्र प्राण रहित मनुष्य तुल्य तथा पल्लव विहीन मंत्र नग्न तुल्य होता है। इसलिये जिन मन्त्रों में लक्षण नहीं उनमें मंत्रत्व नहीं होता यही ठीक है न, यदि

ऐसे कहोगे तो "वीरमित्रोदयकार ने" नमस्ते पुण्डरीकाक्ष, महा विद्या का उपदेश किया है और लक्षण बिना ही मंत्रत्व माना है, कदाचित् कहो कि ये सब मंत्र तो बड़े बड़े उत्तम ग्रंथों में लिखे हैं इसी से इनमें मंत्रत्व मानते हैं—और तुम्हारे मंत्र तो कहीं लिखे नहीं हैं तब इसका यही समाधान है कि हमारे मंत्रों का शाण्डिल्य पंचरात्रादि में सविस्तर उल्लेख है, विष्णु धर्म में लिखा है कि सांख्य योग पंचरात्र वेद—इनका आदर पूर्वक ग्रहण करना चाहिये, तथा रामायण उत्तर काण्ड में लिखा है कि जो पंचरात्र के जानने वाला है वो पाप हीन हो जाता है अतः हमारे मंत्र प्रामाणिक हैं। और यदि आप न्यास ध्यान वाले मंत्रों में ही मंत्रत्व मानते हैं तो आप नारद पंचरात्र ज्ञानकाण्ड चतुर्विंशति पटल समर्पण विधि के निरूपण को और आगे पंचविंशति पटल में पंचाक्षर के ऋषि छंद न्यास ध्यानादि देख सकते हैं, और वहाँ पर भी लिखा है कि अष्टाक्षर शरण मंत्र के ऋषि अग्निकुमार, अनुष्टुप छंद और निखिल वेदवेद्य श्री पुरुषोत्तम देवता, श्री बीज शरणं शक्ति पल्लव जाति और बालक शरीर श्री यशोदानन्दन का ध्यान करना आदि लिखा है। प्रथम साधक ऋष्यादिकों को छै अंगों में स्थापन करे मस्तक में ऋषि, मुख में छंद हरि को हृदय में, स्थापन करे एवं मूलाधार में श्रीम् नाभि में मम कीलक को पादन में शरण शक्ति को स्थापन कर विनियोग सर्वतः करके भगवान् के ध्यान में दत्तचित्त होकर न्यास ध्यानादि करे। पुनः पादन्यास करे हृदय में श्रीम् को, शिखा में कृष्ण को अनुसंधान, शरणं इस

कवच को पहिरे, मम इस अस्त्र को धारण करे फिर सर्व मंत्र को कर में, हृदय में, आगे कथनानुसार स्थापन करे अंगुष्ठ में श्री, तर्जनी में कृष, मध्यमा में नः, अनामिका में शरणं, कनिष्ठिका में मम, पद को न्यास करे इसे पंचाङ्ग कहते हैं, जब षडंगन्यास कहते हैं, श्रीशब्द को हृदय में, सिर में कृष, शिखा में नः, शरणम् भुजा में, मम नेत्र, में, यह क्रम है जब सृष्टि स्थिति हृति और पुनः स्थिति, इस प्रकार ग्रहस्थ पुरुष न्यास करे, इस मन्त्र का न्यास चार प्रकार का है, इसी प्रकार व्रती पुरुष सृष्टि तक इस मन्त्र का न्यास करे; और संहारान्त यति पुरुष न्यास करे, इस प्रकार अस्त न्यास, तीन प्रकार का है। मस्तक में, बदन में, वक्षस्थल में, भुजा में, और जठर से जानु पर्यन्त गुल्फान्त पर्यन्त इसका न्यास है, तथा पाद में भी न्यास करे, और सर्वाङ्ग में सर्व मन्त्र को न्यास करे यह न्यास मन्त्र में जो अक्षर हैं उन ही से करना और स्थिति से भी न्यास करें, जब स्थिति न्यास हो तब हृदय में, भुजा में, मुख में, सिर में, उदर में, जंघाओं में, दोनों चरणों में करना चाहिये। संहार न्यास जब होय चरण में जंघा में घोंटू में, जठर में, हृदय में, भुजाओं में, बदन में, सिर में, अङ्ग में, इस प्रकार समग्र न्यास करे, तदन्तर पदन्यास करे, चार प्रकार का है। सिर से मध्यम में नीचे, पीठ में, सर्वाङ्ग और भी न्यासादिक शास्त्र रीति से करे और अपने अपने अभीष्ट सिद्धार्थ यह ध्यान करे 'जिनने अपनी माता को अपने मुख में निखिल लोक दिखाया तथा ज्ञान भक्ति प्रचारक इन्द्र

मदनाशक गिरीन्द्र धारक स्वकीय रक्षक यशोदानन्द नन्दन का का ध्यान मैं करता हूँ, इस प्रकार शरण मन्त्र भजन करने वालों को सकल सम्पत्ति देता है इसका जप आठ लक्ष अथवा दस हजार अथवा एक लक्ष करे, निष्काम पुरुष इसका जप करे तो उससे श्रीहरि सदा प्रसन्न रहते हैं। इसका हवन खीर से करना चाहिए, इस प्रकार श्री नारद जी से भगवान् ने कहा है, बहुत मन्त्रों के करने का क्या काम है, अन्य अन्य मन्त्रों का फल नाशवान् है तथा बड़े श्रम साध्य है, इसलिये यह अष्टाक्षर मंत्र सर्वोत्कृष्ट है। सकल सिद्धि दायक एवं दोष शून्य है। इत्यादि अष्टाक्षर का प्रकार कह नर पुनः वही महामंत्र पंचाक्षर के भी न्यासादिकों का निरुपण किया है। प्रस्तुत विषय अष्टाक्षर के कारण विस्तार भय से नहीं लिखा है अब पुनः वादी कहता है कि ठीक आपने शास्त्र द्वारा न्यासादिका निरुपण करके मन्त्रत्व तो सिद्ध किया किन्तु तुम्हारे सम्प्रदाय में न्यासादिक करते हमने किसी को नहीं देखा, इसका कारण क्या है। इसका उत्तर यही है कि उक्त मंत्र स्वतः सिद्ध हैं अतः निष्काम भावना से करने में न्यासादि की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। हमारे सम्प्रदाय में विशेषतया उक्त भावना ही प्रधान है। यदि अनुष्ठान करना हो तो न्यासादि सब रखने चाहिये। विशेष प्रकार जानने को नारद पंचरात्र देखो...अब यहाँ यह शङ्का हो आप कहते हो कि अष्टाक्षर मंत्र शरणैक प्रकाशक है तो यह तो मंत्र सिद्ध है।

फिर पुष्टि मार्गीय कैसे क्या पुष्टिमार्ग में साधन इच्छित है, और विभूति वाचक होने के कारण पुरुषोत्तम सिद्धि नहीं हो सकती। श्री विट्ठलनाथ जी ने "भक्तिहंस ग्रन्थ के मङ्गला चरण में" मंत्रोपासन वैदिक ताँत्रिक दीक्षार्चनादि विधि भिर्यः अस्पष्टः अर्थात् मंत्र उपासना वैदिक ताँत्रिक दीक्षा,अर्चनादि विधि द्वारा जिस पुरुषोत्तम का स्पर्श भी नहीं होता। यह निरुपण किया है, इस लिये विरोध आता है। पुरुषोत्तम की प्राप्ति हो नहीं सकती एवं निःसाधनता भी भङ्ग होगी तब तुम्हारी स्वतन्त्रता भक्ति कैसे हुई, और तुम कहते हो कि श्रुति में अनुग्रहैक लभ्यत्व भगवान् को कहा है, सो भी कैसे होगा। तब इसका उत्तर श्री हरिरायजी ने इस प्रकार दिया है। कि यह मंत्र पुष्टिमार्गीय प्रभु श्री वल्लभाचार्य जी के मुख द्वारा पुनः निःसरित हुआ इसलिये अनुग्रह मूलक होने के कारण वर्णात्मा माना है। इसी से अनुग्रहिक साधनता भी दूर नहीं है, और इसी से विभूतिमात्र वाच्यत्व भी नहीं बन सकता। अतःएवं इस मंत्र की कोई उपासना नहीं कही, इस प्रकार मार्ग भेद से श्रवणादिकों की भिन्नता मानी है। उसी प्रकार वक्ता के भेद से मंत्र भेद निरुपण किया है। श्री कृष्णाश्रय ग्रन्थ में 'इति श्री वल्लभोऽब्रवीत्' स्पष्ट कहा है, इस प्रकार शुक मुख में प्राप्त होने के कारण श्रीमद्भागवत को पीयूष द्रवत्व कहा है इसी प्रकार यहाँ की समझना चाहिए। श्रीमद् वल्लभाचार्य जी ने पुष्टीमार्गीय वैष्णवों को शरण मंत्र का उपदेश कर

ऐहिक एवं पारलौकिक की चिन्ता दूर कर महान् अनुग्रह किया। श्री विट्ठलनाथ जी बताते हैं कि यदुक्तं तात चरणैः इत्यादि से, आपश्री ने भी वद्भि रेवं सततं स्थेय मित्येव मे मतिः इससे मंत्र के सतत स्मरण एवं जप की आवश्यकता का उपदेश किया है। अन्यथा एवं चित्ते सदा भाव्य वाचा च पारिकी, आसुरा वेश हो जाने से जीव भगवान् से पराँमुख हो जाता है। अब यहाँ कोई यह प्रश्न करे कि आपने मंत्र का जप एवं स्मरण करना कहा तो स्मरण मन का धर्म है, और जप कुछ जिह्वा से इस प्रकार भाषण किया जाय जिसे अन्य कोई न सुन सके उसे कहते हैं यदि तार स्वर से इ मंत्र- का उच्चारण किया जाय तो इसमें आपत्ति क्या ? श्री मदाचार्यों ने वद्भि रेवंसततम, और श्री हरिराय जी ने शिक्षापत्र में, अष्टाक्षर महामंत्र कीर्तनेन विशेषतः अष्टाक्षर महामंत्रो वक्तव्य इति निश्चयः इत्यादि वाक्यों द्वारा कीर्तन करना भी बतलाया है ही इस प्रकार से साधारण जन समुदाय का भी हित हो जाता है और दूसरे लोगों में इस प्रकार की प्रथा भी देखने में आती है, इस प्रश्न के उत्तर में हमारा इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि वैसे तो भगवान के सभी नाम मंत्र हैं उनके बोलने की भी मर्यादा है तार स्वर से बोलने का प्रकार आधुनिक सा है अस्तु अन्य सम्प्रदायों में भी सद्गुरु द्वारा जिन मंत्रों की दीक्षा जाती है। उनका जोर जोर से उच्चारण नहीं किया जाता यही प्रकार हमारे यहाँ भी है। "अष्टाक्षर निरुपण ग्रन्थ में

लिखा है कि, श्री कृष्ण कृष्णेति कृष्ण नाम सदा जपेत्। आनन्दः परमानन्दो वैकुण्ठं तस्य निश्चितं, सदास्मरेत्तु यो कृष्णं यमस्तस्य करोति किम। भस्मीभवन्ति तस्याशु महापातकराशयः, यःस्मरेत्तु सदा मन्त्रं "श्रीकृष्णः शरणं मम" अष्टाक्षरं जपेन्नित्यं यमो दृष्ट्वा हि शङ्कते, इस ग्रन्थ में अष्टाक्षर का स्मरण एवं जप का ही निरुपण किया है। और आगे मन्त्रार्थ तथा इस मन्त्र के द्वारा अनेक लौकिक कार्यों को भी साधकता बतलाई गई है। यद्यपि उक्त ग्रन्थ श्री विट्ठल प्रभु की कृति है, इसमें कोई सन्देह करते हैं तथापि अवरोध होने से अन्य की कृति हो तो भी संमाननीय है। अब् वदद्भिः वद्धातु का प्रयोग है, इससे व्यक्त करना ही अर्थ होता है। आपके अभीष्टानुसार नहीं। देखिये श्रीमद्भागवत प्रथमस्कन्ध सुबोधिनी, "भगवद्वाचकैः पदै-र्वाक्यैश्च भगवति शक्तितात्पर्यनिर्धारश्रवणं "अर्थात् भगवद्-वाचक पद और वाक्यों का भगवान् में शक्ति तात्पर्य निर्धार करने को श्रवण कहते हैं। और "शक्तितात्पर्थनिर्धारबोधनं कीर्तनं" तथाज्ञातानां वा स्वतः एवोच्चारणं, अर्थात् शक्ति तात्पर्य निर्धारबोधन को * (अथवा मन्त्र तन्त्र प्रकार में कहा है कि "न दोषो मानसे जाप्ये सर्वदेशे पि सर्वदा, जपनिष्ठो द्विज श्रेष्ठ सर्वयज्ञ फलं लभेत) शक्ति तात्पर्य निर्धारित भगवद्वाचक पद् वाक्यों का स्वयम् ही उच्चारण करने को कीर्तन कहते हैं। इन लक्षणों से स्पष्ट मालूम होता है। कि सम्प्रदाय में कीर्तन शब्द मन्त्र उपदेष्टा या पदवाक्यादि का उक्त निर्धार कर

स्वतः उच्चारण को कहते हैं, कथा को भी इस सिद्धान्तानुसार कीर्तन कहते हैं यही मत आचार्य श्री का सुबोधिनी में स्पष्ट है। इसी को दश दिगन्त विजयी श्री पुरुषोत्तम जी ने स्पष्ट किया है। कि "श्रवणं हि भगवद्वाचक पद वाक्यानां गुरु मुखाच्छ्क्ति तात्पर्य निर्धारः तत्पूर्वक अन्यस्याग्रे कथनं कीर्तनं, यहां अन्य स्याग्रे इस एक वचन का ही उल्लेख किया है "अन्येषां नहीं कहा, अतः प्रचलित आधुनिक परिपाटी स्वीकार करने से आचार्यों की आज्ञा एवं मन्त्र मर्यादा भङ्ग होती है। नवरत्न ग्रन्थ में जो श्रीमदाचार्य ने "वदद्भि रेवं सततं" की आज्ञा की है। इस पर प्रभु चरण का प्रकाश "तथा बदनमावश्यकं" निरन्तरं इस मन्त्र का बोलना आवश्यक है इसका विवरण दशादिगन्त विजयी श्री पुरुषोत्तम जी इस प्रकार कहते हैं कि 'वाणी तेजोमयी होने से वदन क्रिया वैखरीत्व होने पर भी वक्ता को पश्यन्ति का प्रकाश कराती, अन्तः करण को आसुर धर्म से परिवर्तन करती हैं। फिर आगे पूर्व पक्षी" इस प्रकार तो आश्रय को ही मुख्यता आती है तो सेवा-वश्य-कत्व बोधक पूर्व ग्रन्थ से विरोध हुआ, तब इसका प्रकारान्तर से व्याख्यान किया, एवमुक्तेत्यादि प्रकारान्तरेण सेवा परं तदास्थेयमित्यर्थोवा, एवं बदद्भि, सर्व चिन्ता राहित्य पूर्वकं सेवा परंतयास्थेयमित्यर्थ, अर्थात् इस प्रकार मन्त्र कहते हैं। सर्व चिन्ता राहित्य पूर्वक सेवा तत्परता से रहना चाहिये, इन वाक्यों से भी आपका अभीष्ट सिद्ध नहीं होता। सेवा करने के अवसर पर मन्त्र का उच्चारण किस

प्रकार हो सकता है यह पुष्टिमार्गीय वैष्णव स्वयं जान सकते हैं। मन्त्र का उच्चारण तो गुप्त ही होता है श्री लालूभट्ट जी भी लिखते हैं कि तथा च पुष्टिस्थैर्यं मन्त्रों नवरत मावतनीयः मनसा पूर्वोक्त तदर्थानुसन्धानेन शरण भावनं च कार्य, आपस के मनोमालिन्य को दूर कर मुरलीधर भट्ट जी भी तस्माद्धेतो सर्वात्मना वाचाव्यक्ति तथा मनसान्तर व्यक्ति तथा तदर्थानुसन्धान पूर्वकं सदा आसुरावेशाभावायाष्टाक्षरो उच्चारयद्भिरेवसेवकैः स्थेयं, यथामानसोन्यत्र वृत्तिर्न भवति मे मनीषा स्तित्युपदेशः, इत्यादि वाक्यों से यही प्रतीत होता है कि इस मन्त्र को सर्व साधारण के समक्ष प्रकाशित न करने से ही सम्प्रदाय की मर्यादा का संरक्षण होगा, श्री हरिराय जी कृतजप प्रकार में स्पष्ट लिखा है कि "कदाचित्स्वभाववश ते प्रतिष्ठा लाभार्थ लोक में प्रसिद्ध करे तो प्रभु फल दान में प्रतिबन्ध करें। तासूँ अति सावधान है रहनो अष्टाक्षरं तथा मन्त्रं जप्यं शरण सिद्धये, श्री गिरधर जी महाराज प्रभृति का भी यही आशय है।"

❀ पुष्टि मार्ग के गुरु ब्रजभक्त हैं। उन्होंने भी रामानुजो गोपि 'गोपिकानन्दन इत्यादि कह कर प्रिय नाम प्रकट नहीं कहा। पुनः तद्भाव भावित वैष्णवों को तारस्वर से सर्व साधारण के समक्ष उच्चारण करना कहां तक सम्प्रदायानुकूल होगा स्वयम् विचारैं, श्री आचार्य चरण ने आज्ञा की है कि शुद्धा प्रेम्णाति दुर्लभाः" शुद्ध प्रेमी तो दुर्लभ हैं अतः "अङ्गी कृतौ समर्यादो" आधुनिक जीवों का मर्यादा सहित अङ्गीकार है।

बहुत से यह ख्याल करते हैं कि हमारे पुष्टि मार्ग में साधन नहीं है केवल अनुग्रह ही है निस्साधन मार्ग है।" इत्यादि २ कह कर शास्त्रों की अवहेलना के साथ पुष्टिमार्गीय मर्यादा की भी प्रतिदिन अवहेलना की जा रही है। और मनमानी घरजानी का परिणाम सम्प्रदाय की फूट से टूक-टूक हो जाते हैं। और प्रेम आसक्ति व्यसन तो दूर रहे किन्तु छोटी-छोटी बात वाद विवाद का विषय बन जाती है। अतः वैष्णव समाज से मेरा नम्र निवेदन है कि वे अयं मन्त्रो नेतर साधारणः किन्तु पुष्टि मार्गीयः समर्पण गद्यवत् अत एव प्रभु चरणै रभिहितं यदुक्तं तातचरणैरित्यादि श्री मदाचार्य जी के ग्रन्थों का परिशीलन कर समझें किन-किन साधनों का निषेध और कौन-कौन साधन उपादेय बतलाये हैं। अनन्तर आचार्यों की पद्धति को जान कर तदनुसार चलने का प्रयत्न करेंगे तो, सम्प्रदाय की उन्नति से जीवों का कल्याण होगा अन्यथा लाभ प्रतिष्ठा का ध्येय रखकर किया गया तो पाखण्ड जैसा हो जायगा। बस इतना निवेदन ही विज्ञ वैष्णव समाज को पर्याप्त होगा और यदि स्वभाव वश फिर भी अपरितोष रहा तो सेवा में पुनः प्रस्तुत होना पड़ेगा।

भवदीयः-

पं० जगन्नाथ झुनझुनजी चतुर्वेदी शास्त्री

दशभुजी गणेश-मथुरा।

* श्रीनाथ जी *

श्री मद्वल्लभो जयति

सौन्दर्यं निजहृद्गतं प्रकटितं स्त्रीगूढभावात्मकं
पुंरूपं च पुनस्तदन्तरगतं प्रावीविशत्स्वप्रिये ।
संश्लिष्टावुभयोर्बभौ रसमयः कृष्णोहि यत्साक्षिकं
रूपं तत्त्रितयात्मकं परमभिध्येयं सदा वल्लभम् ॥१॥

यह जो वर्तमान काल में पुष्टि दैवीसृष्टि भूतल में जो स्थित है सो मूलधाम सों भगवदिच्छा सूं आई भई है। यह पुष्टि दैवीसृष्टि ब्रह्माण्ड की रचना की नहीं, सो गीताजी में हूँ उभय प्रकार की सृष्टि वर्णन है। याही प्रमाण गोपालदास जी हू "वल्लभाख्यान" में गाये हैं।

"दैवी आसुरी बे उपजावी"

और श्री महाप्रभु जी पुष्टि प्रवाह मर्यादा ग्रन्थ में तीन प्रकार की वर्णन किये हैं। पुष्टि प्रवाह मर्यादा, तासूँ भी निश्चय होय है कि पुष्टि दैवीसृष्टि मूल-धाम ते आई भई है फिर वाकूं स्पष्ट करिवे कूं आज्ञा करे हैं।

"तस्म ज्जीवाः पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न शंसयः"

मर्यादा दैवी और प्रवाही-उभय सृष्टि सों भिन्न हैं यासूं सिद्ध होय है कि यह पुष्टि दैवीसृष्टि मूलधाम सों आई

भई है भगवदिच्छा सो, कितनेक को मन्तव्य है कि श्री स्वामिनी जी के श्राप सूं आई है परन्तु यह बात असंभव है प्रमाण नहीं है। और भगवदिच्छा सूं आई है यामैं प्रमाण श्री गोपालदास जी को—

चौखड़ा–"बीते परिवत्सर बहुते, बिछुरे जीव ब्रह्मते जबते"

श्री सर्वोत्तम जी, श्री वल्लभाष्टक, सप्तश्लोकी, खास गद्यमन्त्र सूं सिद्ध होय है कि यह सृष्टि भगवान् की इच्छा सूं आई है।

रसात्मक पुरुषोत्तम को स्वरूप 'रसौवैसः' श्रति प्रतिपादन करे है। "आनन्दमात्र करपादमुखोदरादि" आनंद के तीन विभाग विषयानन्द, ब्रह्मानन्द, भजनानन्द,
प्रवाही मर्यादा पुष्टि

प्रवाही कृत संसार फलहू संसार जन्ममरण

मर्यादा को कर्त्तव्य वेदोक्तसाधन फल मोक्ष

पुष्टि को कर्त्तव्य भगवत्सेवा फल-स्वरूपानन्द को अनुभव

"भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथाभवेत्"

पुष्टि दैवीसृष्टि भगवान ते बिछुरी अनेक जन्मान्तर होने से आसुरी में मिलकें आसुरीवत् होगई। पुष्टि धर्म आनन्द ताप रूप तिरोधान भये, तासूं अपनो स्वरूप भूल कें भव-

समुद्र में गिरती जाय रही है, कहूँ तट प्राप्त नहीं होय। परंतु कहूँ स्वास्थ्य न भई और अपनी मूल वस्तु की प्राप्ति ज्ञान हू नहीं है तासूं अत्यन्त दुःखित भई है।

एक समय प्रभु ने अचानक देखी तब दया आई "दयया निज माहात्म्यं करिष्यन् प्रकटंहरिः"

वाण्या यदा तदा त्वास्यंप्रादुर्भूतं चकार हि।

"तब दया आई हरि हिये में प्रकट मुख मूरति करी" आदि सब चोखड़ा वाचियो। श्री वल्लभप्रभु को प्राकट्य होनों भूतल में नहीं सम्भवे, कारण मूलधाम में हू विरहाग्नि "अंतर्यामी स्वरूप ते युगल तथा लीला सामग्री सम्पूर्ण के हृदय में विराजे हैं, फकत युगल के संयोग काल में स्वक्रियात्मक स्वरूप सों प्रकट होय कें जुगल को विहार सिद्ध करे हैं। मध्यस्थ साक्षी स्वरूप सूं ऐसे मूल धाम में रस समाज में विलास करिवे वारे प्राकट्य असम्भव है: होय नहीं—परंतु आपको नाम "स्वप्रिय—"वल्लभाख्य तासूं श्रीकृष्णचंद्र की आज्ञा सूं प्रकट होत भये।"

"तस्यैवात्मानुभावप्रकटनहृदयस्याज्ञयाप्रादुरासीत्" और कारण "कृपानिधि" कृपाद्रवीभूत भई ताते नाम "महाकारुणिकः" ताते "शरणं तं प्रपद्ये हुताशम्" सप्त श्लोकी में स्व करुणा सह भगवान की करुणा दूसरी श्री महाप्रभु जी की ताते आप में

द्विगुणी करुणा भई ताते "महाकारुणिक" नाम है आपको स्वरूप श्रीकृष्ण मुखारविंद वियोगाग्नि स्वरूप है ताते नाम श्रीकृष्णास्यं और मुखारविंद फल रूप है सो श्री महाप्रभु ही स्वयं फल स्वरूप सूं दैवीसृष्टि कूं फल दान करन कों प्रकट भये और पुष्टि भक्ति मार्ग प्रकट भयो। जा मार्ग में फल ही स्वयं साधन रूप कीनो वाही सूं पुष्टिमार्ग कह्यो है। ताते कियो नाम "स्वदासार्थ कृता शेष साधनः" ऐसे गोलोक सुविलास छोड़ भूतल पधारनो स्वार्थ छोड़—तासूं नाम "स्वार्थोज्झिताखिल प्राणप्रियः" यह दैवीसृष्टि प्राणप्रिय ताके उद्धार करणार्थ स्व स्वार्थ त्याग कर भूतल पधारत भयो। अथवा प्राणप्रिय प्रभु की आज्ञा सूं पधारत भये हैं। पुष्टि नाम अनुग्रह, केवल अनुग्रह करकें ही पधारत भये। ताते " दैवोद्धार प्रयत्नात्मा भूतल में भक्ति मार्ग भी अनेक हैं सो कपिलमुनि कहे हैं "भक्ति मार्गो बहुविधः" सो भक्ति जा प्रकार कौ तैसो फल ता सर्व भक्ति मार्ग सूं विलक्षण पुष्टि भक्ति मार्ग प्रकट कर्यो याते अपनी दैवीसृष्टि कूं स्वरूप बल फल दान कर पकरि विलक्षण भक्ति मार्ग करन कों प्रकटे "भक्ति मार्गे सर्वमार्ग वैलक्षण्यानुभूतिकृत्" और अर्जुन के शरणमार्ग के उपदेश सूं पृथक् न्यारो ही शरण मार्ग प्रकट करत भये "पृथक् शरण मार्गोपदेष्टा" तासूं यहाँ रतिपथ (स्नेहपथ) रति नाम स्मरण पथ प्रकट करन कों प्रकटे। तहाँ यदि शङ्का होय जो सेवा मार्ग तो भूतल में प्रकट हो सो सेवा मार्ग नहीं है पूजा

मार्ग है, तामें वेद विधि प्रमाण है। वैदिक शीतल जल ते स्नान करायवे की विधि है। सोयहाँ नहीं है ताते ताकों स्नेह वात्सल्यता प्रेम भी वहां नहीं है ताते अपनी सृष्टि के तांई श्रीगीताजी नहीं स्नेह रूप सेवा मार्ग प्रकट करन कों प्रकटे "सेवा रीति प्रीति ब्रज-जनकी जन हित जग प्रकटाई" सो सेवा की रीति करें सो नही बनें ताते आप स्वयं करकें सिखावते भये "जन शिक्षा कृते कृष्ण भक्ति कृन्निखिलेष्टदः पहिलें तो स्त्री शूद्रादिकन को उद्धार ही नहीं यहां तो श्रीमहाप्रभुजी स्वयं स्त्री शूद्रादिक के साथ सब को उद्धार करते भये। कारण स्वतन्त्र वे ही तीन स्वरूप है" सर्व सामर्थ्य शक्ति युक्त ताते नाम (विभुः) ऊपर कह्यो जो "दैवोद्धार प्रयत्नात्मा" सो दैवी करके मर्यादा नहीं, मर्यादा सृष्टि कैं साधन ही बल है। यह सृष्टि पुष्टि दैवी तो वेदातीत है साक्षात् स्वरूपानन्द की अधिकारी है। ताकें साधन बल कहां ते होय तासूं यह पुष्टि दैवी सृष्टि मूल धाम ते आई हैं यह सिद्ध भयो। ताते इनको पुष्टि भक्ति मार्ग प्रकट करनो सेवा रस प्रकट करनो। आपको रूप अधिकार कर करके भक्ति मार्ग रूप कमल विकसित करनो दैवी जीव भ्रमर रूप कों पान करणार्थ स्वरूप दर्शनार्थ ग्रन्थादिक प्रकट करने आदि शरण प्रकार के प्रमाण दैवी उद्धारार्थ ही हैं। ताते "साकार ब्रह्मवादैक स्थापकः" वेद पारगःऽ"-- "मयावाद निराकर्ता सर्ववादि निराश कृत" "भक्ति मार्गाब्ज मार्तण्डः" "ब्रह्मवाद निरूपकः" इतने नामन को विकाश है। यह पुष्टि दैवी सृष्टि सबते विलक्षण, ताके अर्थ सर्व प्रकार विलक्षण प्रकट करत भये। सो एक समय आप

श्री ठकुराणी घाट पौढे हते। आपकों यह चिन्ता भई कि मेरो भूतल पधारनो दैवी जीवन के उद्धारार्थ ही है यह तो आसुरवत्त है रहे हैं जीव कहाँ प्रेम कहाँ परस्पर सम्बन्ध नहीं पधराये इतनो विचारते ही श्रीयमुनाजी की पुलिन में ते साक्षात् जो कोटि कन्दर्प लावण्य स्परूप प्रकटाते भये आज्ञाकरी जाकों आप सम्बन्ध कराय अंगीकार कराओगे ताके दोष नहीं देखुंगो याके तांई सिद्धांत रहस्य ग्रन्थ विकाश कियो। या प्रकार ही प्रतिज्ञा करते भये सो प्रतिज्ञा सत्य है (सत्यप्रतिज्ञ) कारण नीति विशारद (नयविशारदः) त्रिगुणातीत स्वतन्त्र हैं फिर (वाक्पति,) ताते या दैवी सृष्टि के साधन तो केवल श्रीमहाप्रभुंजी को अङ्गीकार मात्र ही है (अङ्गीकृत्यैव गोपीशबल्लभी कृत मानवः) या प्रकार विना साधन साध्य सुखतो केवल श्री महाप्रभुजी के प्रकट किये पुष्टि भक्तिमार्ग में प्राप्त होय है और ते नहीं ताते या मार्ग में केवल अनुग्रह नियामक है (नकिसाधन) तासूं श्रीमहाप्रभुजी कृपा कर कह्यो सो साक्षात् सर्वदा करावते भये। प्रभु तुमारे पति तुम दास सो सम्बन्ध दृढ़ है नित्य हैं। अब ऐसे संसारासक्त आसुरवत् रूपन कौं सेवा कौ अधिकार तो कैसें मिल सके सो जैसें सारस्वत कल्प में हूँ वेणुनाद द्वारा सबन को सुधा दान करते भये। सुधा दान ते सबन कों भगवदीयत्व सिद्ध किये ताते प्रथम श्रीमहाप्रभुजी नाम मंत्र दान करते भये। कारण नाम आपके मुखारविन्द सों प्रकट्यो है तासों नाम सुधा रूप है ताके दान ते सुधा को दान करते भये। सो आपकी सुधा को सम्बन्ध होते ही

भगवदीयानंद प्राप्त भयो दोष बाहर होत भये निर्दोष भयो अब आप को अधिकार प्राप्त भयो तब वेणुनाद द्वारा अव लक्ष्मणभट सुकुमार दैवोद्धार अर्थ त्यागी सो दो नाम ऊपर कहि आये, निवेदन मंत्र ते प्रभु स्वामी है। जीव शरन आए हैं सो दास की जो वस्तु है सो स्वामी ही है भूल कें स्वामी की शरनाङ्गीकार अपनी मान राखी है सो अज्ञान दूर कर स्वरूप ज्ञान कराय श्रीमहाप्रभुजी ते सर्व समर्पण करावत भये सो यह सब आप ही के लिये अपनो मान राखी है सो आपकी वस्तु आपके समर्पण करूहूँ। देह इन्द्रिय अन्तःकरण तिनके धर्म देह सम्बन्धी पुत्र धनादिकयह लोक परलोक सर्व समर्पण करूहूँ। या प्रकार समर्पण सूं दासपनो सिद्ध भयो अब दास कूं तो स्वामी की सेवा करनी, यह ही परम धर्म है। सहज ताके लिये आत्म समर्पण सिद्धयर्थ ही सेवा मार्ग प्रकट करत भये। कारण सेवा में ही आत्म समर्पण सिद्ध होय है ता विना नहीं होय तासूं सदा ही सेवा कर्तव्य है सेवा के उभय दल है। कीर्तन और स्मरण, यहां पुष्टिमार्ग में तो और साधन की अपेक्षा सूं सदा ही साधन और फल हूँ सेवा ही है।। तामें शरणागति भाव सूं ही सेवा कर्तव्य है। ताते जो प्रथम नाम मन्त्र दीनो है। ताके जपते ही शरणागति सिद्ध होय है, सो नाम मन्त्र श्रवण में सुनायो जाय है ताको कीर्तन, कैसो गोप्य वस्तु कान में ही कही जाय है।

वे अधर रस को पान श्रवण द्वारा कराय हृदय में अथवा अधरामृत रस दान करते भये सो अन्तःकरण द्वारा रुद्धकों रोम प्रति अधर सुधा को सम्बन्ध कराते भये। सो नाम अधरामृत

रूप है सो (गोपालदास जी गाये हैं।"नाम आप्या जीवने शुभ मिष्ट मुख मकरन्द" यह नाम रूप मन्त्र अत्यन्त गोप्य पदार्थ है ताकूं तो गुप्त ही राखिकें पान करें। प्रकट करवे योग्य नहीं ताते श्रवण में सुनायो जाय है। तासूं यह सिद्धान्त प्रकट कियो है कि यह मन्त्र अधर सुधा रूप है, ताते महा मन्त्र को तो जप है, मंत्र नाम (रहस्य) गुप्त ताकों निरन्तर जप ही करिवे योग्य है प्रकट करिवे योग्य नहीं है। जैसे यह अष्टाक्षर मन्त्र तो नारद पंच रात्र में हूँ प्रसिद्ध है, सो भले ही होय परन्तु हम को तो श्री तातचरण श्री महाप्रभु जी के श्रीमुखारविन्द ते प्रकट हम कों अधर सुधारूप सोई फल दायक है और ताहि ते यह लोक परलोक में निश्चिन्त है "यदुक्तं तात चरणैः श्रीकृष्णः शरणं मम तत एवास्ति निश्चिन्त्य मैहिके पार.लौकिके। ताते या परम धन को तो गुप्त ही राखनो, प्रकट करनो नहीं। ताते यह सब प्रकार करवे को आश्रय प्रसिद्ध भयो। अष्टाक्षर को जप ही कर्तव्य है। प्रकट उच्चारण नहीं करनो। कारण जप करवे सूं ये नाम रूप रस अन्तःकरण गामी होय सर्वाङ्ग कों रस रूप करे है बाहिर प्रकट करवे सू रस को तिरोधान हो जाय है। ताते "कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति कृष्ण नाम सदा जपेत्" यह मार्ग पतिव्रतान को ही है जैसे लौकिक में पतिव्रता स्त्री अपने पति को नाम काहू के आगे ले नहीं है केवल मन ही मन स्मरण करे है वे लौकिक स्त्री हू अपने पति को नाम पुकार कर नहीं बोले है तो अलौकिक स्त्री अपने पति प्रभु को नाम

कैसे—प्रकट करे। वे सुआ सारस्वत कल्प को पढ्यो भगवन्नाम ले रह्यो जब कृष्णदास मेघन गये है। वहाँ कछु डर सो मालूम भयो तब भगवत् नाम लियो तब वा सुवा ने जल पियो, ऐसे तीन विरियां पियो, याको आशय कि एक क्षण भी नाम विना रहनो नहीं। और वे सुवा कछु प्रकट नाम नहीं लेतो हतो मन में जप कर तो हतो या प्रकार को पातिव्रत धर्म है तासूं नाम (पतिव्रता पतिः) जैसे स्त्री अपने पति कूं काहू के आगे प्रकट नहीं करे है ताई से अपने प्रभु को मन्त्र रूप नाम कीर्तन रेडिया द्वारा जगत में प्रसिद्ध कियो जाय यह महा अनुचित है मार्ग के सिद्धान्त सूं विरुद्ध है। कारण कि रेडिया द्वारा जगत् में नाम की ध्वनि सबके श्रवण में जरूर ही पड़े सो अन्य मार्गीय म्लेच्छादिकन कों श्रवण नाम मन्त्र को होय फिर यह सबके सम्बन्ध बारी नाम की ध्वनि अपने कर्ण में प्रवेश करें हृदय में परे है। तासु वे अधर सुधा को सम्बन्ध तो तिरोधान भयो और अन्य सम्बन्ध वारौ भयो "अन्य सम्बन्ध गन्धोपि कंधरामेव वाधते" श्रीमत्प्रभु चरण को ही वाक्य है। यह मन्त्र तो प्राणरूप "प्राण स्थानीय है।" सो जैसे प्राण वाहिर निकसे, तब जैसी देह की हानि होय तैसी नाम जब प्रकट होय तब स्वधर्म की हानि क्यों न होय अवश्य ही होय। परन्तु या प्रकार करिवे को कारण तो और ही मालूम होय है कि कलि ग्राम (कलकत्ता) में गौडिया संप्रदाय बारे वंगालीन कों सहवास विशेष है। और वे झांझ मृदंग सों श्रीहरि नाम मन्त्र को कीर्तन दिवा निशि नृत्य ते भये करें है यदि उनके सहवास सूं ही ऐसो करते होंय—

—परन्तु अपने पुष्टिमार्ग में वैष्णव को या प्रकार करवे को धर्म नहीं है यदि हमहूँ ऐसेई जान करें वैष्णव जान कें तो श्रीमहाप्रभुजी की ही आज्ञा को उल्लंघन रूप कार्य सर्वथा नहिं करे। परन्तु सत्सङ्ग विना भलें ही ज्ञान बिना ही या प्रकार होतो होयगो सो अब या प्रकार छोड़ कर जप ही कर्तव्य है नहीं तो श्रीमहाप्रभुजी की आज्ञा को उल्लंघन करनो है। श्रीगुसांईजी श्रीवल्लभाष्टक में आज्ञा करें हैं।

"तस्माच्छ्री वल्लभाख्य त्वदुदितवचनादन्यथा रूपयन्ति भ्रान्तायेते निसर्गत्रिदशरिपुतया केवलान्धं तमोगाः ॥इति॥

श्री महाप्रभु जी की आज्ञा उल्लंघन करवे की त्रिलोकी में कोई को सामर्थ्य नहीं है ? तो फिर आपके दास वैष्णव तो कैसे न रख सकें, यही तो आप मार्ग की संगीत करि विडम्बना ऐसे करनौ है। श्रीमहाप्रभु ने सेवा मार्ग प्रकट कियो है। सो सेवा के ही अङ्ग हैं। सेवा और स्मरण तासों पुष्टि मार्गीय जीवन को ध्येय कर्तव्य है सो आप चतुः श्लोकी में आज्ञा करें हैं। "स्मरण भजनं चापि नत्याज्य मिति मे मितिः" भजन नाम सेवा और स्मरण भी ३ प्रकार है। एक तो शरणागति रूप नाम मन्त्र अष्टाक्षर महामंत्र को जप, दूसरो सेवा के सङ्ग ही स्मरण से जो सेवा करिकें ताकौ भाव विचार सहित भावना पूर्वक सेवा कौ स्वरूप ज्ञान पूर्वक विरह भावना के रूप सों ही कर्तव्य है। भावना के बिना नहीं केवल क्रिया मात्र ही जो सामिग्री भोग

धरे ता सामिग्री कों श्रीगोपीजन के सङ्ग भाव रूप भावना करिधरे सो प्रभु या भाव सों अङ्गीकर करें ताको अनुभव भक्तन कों किये तब वे भक्तजन के ऊपर प्रसन्न होय जो भेद भाव कों अङ्गीकार कराये हैं। 'ताते वा पर कृपा करें'। "महतां कृपया यावद् भगवान् दययिष्यति" सदा करिवे को प्रयोग तो ये ही है कि सच्चे स्वरूप के भीतर श्री वल्लभि विरहाग्नि स्वरूप विराजे हैं। ताको प्रकट करणार्थ ही सेवा को उद्यम है। सो ये विरहाग्नि स्वरूप विरहाग्नि के सम्बन्ध से ही प्रकट होंय—जैसे काष्ठ में अग्नि है सो वाहर ते अग्नि को रूप धरिकें तब भीतर ते अग्नि प्रकट किये। तैसे नाम जप को आशय चित्त की प्रवीणता होय जप ताको नाम सेवा मतलब यही है कि निरोध सिद्ध सेवा, पुष्टि को ये ही फल है। 'श्रीद्वारकेश निरोध मांगे ये ही फल के आसरें।' जैसे सारस्वत कल्प में हूं सब गोकुलवासिन को निरोध सिद्ध करते भये जैसे श्री गोपीजन दिवस में गुन गान करते, गोप रात्रि में करते दोनोंन की आशक्ति सिद्ध भई। याही प्रकार श्रीमहाप्रभु जी को हूँ ये ही स्वरूप है, निरोध सिद्धार्थ "अहं निरुद्धो रोधेन निरोध पदवींगतः" ऐसो निरोध जाकूं सिद्ध होय सो दूसरे को सिद्ध कराय सके। ताते निरोध की सिद्धार्थ ही सेवा मार्ग प्रकट करते भये हैं। सो सेवा दो प्रकार की ऊपर कहि आये। या प्रकार की सेवा सों तथा स्मरण सों निरोध सिद्ध होय, और उपाय नहीं है। अब सदा स्वरूप सेवा करे आखिर में मानसी सदा करे हैं। तनुजा सेवा सों बाहिर की इन्द्रियन को निरोध भयो मानसी सिद्ध अन्तकरण-गामी

हृदय सूं अन्तः करण मन आदि को निरोध होय "सो—मारग-रीति दिखाई" तामें कह्यौ आरती कर अनोसर करके बैठे निज गृह आई। वेणुगीत पुनि युगल गीत की रस बरखा वरखाई। सेवा समय रूप रस अनुभव, अनोसर में विरहानुभव या प्रकार दो रीति ते स्मरण को स्वरूप भयो अब तीसरो गुणगान यशोगान अष्ट सखान के लीला के कीर्तन सो कीर्तन राग-रागिनी सहित समाज सहित सारङ्गी, तमूरा, मृदङ्ग, झाँझ पेटी आदि साहित्य पूर्वक लीला विलास रूप कीर्तन प्रभु के सान्निध्य करने। सोई वैष्णव समाज में अन्य मार्गी दुःसङ्ग नहीं सो या प्रकार सों कीर्तन करने तामें जौं लीला को कीर्तन होय ता लीलाके ध्यान मानसीरूप पूर्वक कीर्तन करने। श्री अष्टसखान की वाणी तो अनुभव की है जैसे समय के दर्शन होय हैं। तैसोई वर्णन कर गायो हैं। सो सुनके प्रभु के समय की सुधि आवत है। मानसी रूप को अनुभव करत है सो कीर्तन करिबे वारेपे प्रसन्न होंय बाकी सेवा मानत हैं। सोई श्रीसर्वोत्तमजी में "स्व यशोगान संहृष्ट हृदयाम्भोज विष्टर:" यशोगानते हृदय में पापादि कुरूपसो सब निवृत्त होंय जाय हैं। कारण के पाप रूप मुर दैत्य है सो अपने वैरी को नाम सुनते ही तत्क्षण बाहिर निकर जाय। तब वे भक्त को हृदय शुद्ध होय जाय है तब वा शुद्ध हृदय में प्रभु पधारें हृदय कमल विकसाय और हरिरस भर मधुप रूप होय अमृत दान करे हैं। तब वा भक्त को हृदय प्रभु विराजवे सों अमृत

समुद्र तुल्य है जाय। तब वा भक्त के हृदय समुद्र ते विविध प्रकार रस मनोरथ तद्रूप सेवन रूप तरङ्ग प्रकटाय सो भक्त की तरङ्ग कों पूर्ण करत हैं। "यशः पीयूस लहरी स्रावितान्यरसः परः भक्तेच्छा पूरकः" "जो सुख होत गोपाल हि गाये। सो न होत व्रत जप तप संयम कोटिक तीरथ न्हाये।

येही निरोध को स्वरूप। गुण गान सो समाज में हूँ भगवत् कृपा ते कोई समय चरित्र व्यवस्था होय जाय है परन्तु भक्ति में विशेष रूप में निरोध होय है। ताते निरोध होयवे में सेवा स्मरण ही कारण रूप हैं, तासू ही आज्ञा करते भये "स्मरणं भजनं चापि न त्याज्य मिति मे मीतः या प्रकार गुणगान कीर्तन करनो, परन्तु नाम मन्त्र को तो जप ही करनो। जपते हू निरोध सिद्ध होय यह स्मरण को तृतीय स्वरूप कहत हैं। के जप करती विरियां दृष्टि कूं खोले नहीं और नेत्र मूंद लेय और वस्तु में चित्त वृत्ति जाये नहीं, फिर जप माला सों करनों सो माला कूं गौमुखी में राखनी ताकों भी उपरना सों ढांकनी और "जहाँ नाम तहां स्वरूप" स्वरूप तहां लीला सहित ध्यान सहित जप करनो यह खास निरोध को अंग है॥

चतुश्श्लोकी में कह्यो—

सर्वथा सर्व भावेन भजनीयो व्रजाधिपः।
स्वस्याय मेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन॥१॥

या प्रकार श्रीमहाप्रभुजी की आज्ञा प्रमाण सेवा स्मरण

कर्तव्य है। यदि या प्रमाण न करे तो आपकी अप्रसन्नता ही होय ताकों कबहू पुष्टिमार्ग को फलदान नहीं करें। जप करते कूं ये फल रहस्य होय जैसे अखण्ड जप चाचा जी हरिवंश जी सामग्री ले के जाते हते परन्तु नाव नहीं मिले श्रीयमुनाजी में चलकें पार गये सङ्ग एक वैष्णव हते वासूं कही अष्टाक्षर नाम लेते चलियो में पाँय धरके उठाऊं तापे पाँय धरकें चलियों सो जहाँ ताईं ऐसें कियो गये आगे-आगे न्यारो पाय धरयो डूबवे लग्यो तब चाचाजी हाथ पकर पार ले गये तब वाने पूछी कि भगवद्‌नाम तो मेंहूँ लेतो हतो तब चाचाजी ने कही मेरी सुनी है तेरी अब सुनेंगे। यही बात कों लेकें वैष्णव ने श्री गुसांईजी सों पूछो तब आप आज्ञाकरी अर्द्धरात्री गई हती तू चाचाजी के पास जाय आप जह जाप देखनों चाचाजी तो भर निद्रा में सोये हैं। विनके रोम रोम में ते अष्टाक्षर ध्वनि प्रकट है रही है। ये देखकें विस्मित है गयो, जो लिख्यो है। "कृष्ण नाम स्फुरे पल न आज्ञा टरे या प्रकार की दशा जप किये ते ही होय, नाम वाहिर प्रकट करवे ते या फल सों रहित होय कि विपरीत फल की प्राप्ति होय, तासूं आपकी आज्ञा प्रमाण सदा करे तो वाकों तो फल प्राप्ति अवश्य होय यदि आज्ञा प्रामाण न करे तों नहीं होय यह निश्चय है। तासूं अपन के तो श्रीमहाप्रभुजी की आज्ञा ही परमहितकारिणी है। जब या प्रकार की श्रीमहाप्रभुजी ने अपने जीवन पर कृपा करी है सो अनिर्वचनीय है। कहते नहीं बने। तासूं १ तो अष्टाक्षर महामन्त्र की शरणागत भावना

सहित जप करनो । और श्रीमहाप्रभुजी ने श्रीसुबोधिनी जी आदि ग्रन्थ प्रकट किये सो आपको स्वरूप ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ "दुर्लभांघ्रि सरोरुहः" आपकी वाणी को आशय हूँ दुर्लभ, यदि जीवकों आपकी आज्ञा को ज्ञान न होय तो अकृतार्थता ही भई ताते जा प्रकार वाणी को वोध होय ताके आप असाधारण साधन प्रकट करते भये आपके अष्टोत्तर शतनाम श्रीसर्वोत्तम जी, वे नाम के पठादिकसूं आपकी दुर्बोध वाणी हूँ सुवोध होय श्रीगुसांई जी आज्ञा करे हैं। "श्रद्धा विशुद्ध बुद्धिर्यः पठत्यनुदिनं जनः" आगे समाप्ति में कह्यो 'अतः सर्वोत्तमं स्तोत्रं जप्यं कृष्ण रसार्थिभिः' जैसे अष्टाक्षर को जप करनो तैसें १०८ नाम श्री सर्वोत्तम जी कोहू जप ही करनो, जहां तांई शुद्ध पाठ उच्चारण न होय तहां तांई तो पाठादिक करनो और शुद्ध आयवेसूं जप ही करनो । कृष्णाधर रस की प्राप्ति के अर्थ ही करनो जप करवेतेही कृष्ण रस की प्राप्ति होयगी अन्यथा नहीं ताते या श्रीसर्वोत्तम स्तोत्र को फल प्राप्ति कह्यो "कृष्णाधरामृतास्वादसिद्धि रत्र न संशयः" सो रूप सिद्धि प्राप्ति होयगी तासूं जप ही करनों योग्य है विशेष कहा कहनों है सो शिक्षा पत्र में यह हू कह्यो है "स्मरन्ति स्मारयन्तीह हरेर्नाम कलौयुगे" या कोहू आशय यह जो आपकूं जप करे और वैष्णवनकूं करावे स्मरण करे और करावे परन्तु वाहिर प्रकट न करे यह आशय है अथवा नाम मन्त्र को स्वरूप अवगाहन स्वजातीय (समानस्वीय भाववारे सों मिलकें स्मरण करे "निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः"

जैसे श्रीगोपीजन वेणुगीत को अवगाहन समान स्वीय गोपीजन के साथ कर रहे इतने में और की तो कहा चले श्री यशोदाजी बिनके मण्डल में पधारे, तब वे रहस्यवार्ता करके विलास करतहते सो बन्द करके बाललीला वर्णन करन लगे "प्रायोवताम्ब विहगा मुनयोवनेस्मिन् "इतनो सुनकें जब पधारे तब पीछे अपनों रहस्य विचार करवे लगे " पूर्णाः पुलिन्ध उरुगाय पद्दाञ्जराग" अपनो भाव बिजाती के आगेहू अपनो भाव विलास प्रकट नहीं कियो सो कारण यशोदाजी को बाल भाव को विलास अनुभव है, श्री गोपीजन को तो किशोर लीला को रस विलासकर अनुभव है। सो श्रीयशोदाजी के आगे प्रकट नहीं कियो सो तो दूर रेडिया द्वारा जगत को कैसे प्रसिद्ध कियो जाय, लौकिक में धन है सो गुप्त तिजोरी में धरें हैं। कोई के आगे प्रकट नहीं करे हैं सो तो नाशवान् है, देह छूट जाय सब धन यहाँ ही रह जाय सङ्ग नहीं जाय है, ताकी जब इतनी रक्षा करें हैं तो यह तो महा अलौकिक परम धन कैसे प्रकट कियो जाय, यही है बड़े आश्चर्य की बात है। अब भी प्रभु कृपा सूं समझजानों परम युक्त है, नहीं तो पर्यवसान में अनर्थ ही समझनो "मोहन को स्मरण कीजै मन में" श्री यमुना जी को नाम लीजे जुड़ाने

प्रसङ्ग दूसरो—

यह जो या प्रकार श्री महाप्रभुजी के चित्र जी पधराय भोगधरि आरती करके फिर दूसरे दिन कछू नहीं जहां के तहां

ही पधराय दीने। यह रीति पुष्टि मार्ग की नहीं है। मर्यादा की है कारण कि मर्यादा में स्वरूप को मन्त्र द्वारा आवाहन करके पूजा करके फिर विसर्जन कर देय हैं करें कछू नहीं। यह अपने मार्ग की रीति नहीं पुष्टि में तो नित्य है, और आवाहन विसर्जन करवे में अनित्यता सिद्ध होय है ताते ऐसे नहीं करनों या के लिये दो दृष्टान्त हैं।

प्रथम तो वासुदेवदास छकड़ा भेट की मुहर लायकें गोला में भरकें ऊपर चन्दन चढ़ावते भये ले जाते, गाम बाहिर में जाय गोलाफोड़के ले जांय, जब एक विरियां श्रीगोपीनाथ जी ने कही ऐसे नहीं करनी जामें भावना भई ताकूं अन्यथा कैसें कियो जाय।

दूसरो एक विरियां श्रीमहाप्रभु जी के आगे हूँ या ही प्रकार कर लाये आप कह्यौ ऐसे नहीं करनों।

पूजा मार्ग में स्वरूप खंडित या प्राचीन होय जाय ता कों बदल कें नयो स्वरूप धराय पूजा करें अपने मार्ग की यह रीति नहीं, अपने यहां तो वस्त्र सेवा होंय, बहुत समय होयवेसूं जीर्ण है जांय तोहू वाही की सेवा करी जाय वाकूं छोड़ दूसरो नहीं पधरावें वाकूं और वस्त्र में पधराय वाही की सेवा करी जाय है—एक रामदास ब्राह्मण हो शालग्राम और श्याम स्वरूप की सेवा करी ठाकुरजी के स्वरूप ऊपर शालग्राम कों पधरावें। श्रीमहाप्रभुजी ने आज्ञाकरी कि

श्रीठाकुर जी की छाती पर मत धरें वाने कही कि मैंने तो ठाकुरजी विसर्जन करदिये अब तो वे ठाकुर नहीं हैं। आपकी कही न मानी दूसरे दिन फिर आय सेवाकरवे कूं बटुआ खोलो तो शालिग्राम के टूक-टूक है गये देखे। इतनी बात सूं ही समझ लेनों कि अपने मार्ग में स्वरूप सेवा आदि सब नित्य है, जाते नित्य नवने-विशेष रूप में तो वा चित्र जी के पधरायवे के एक स्थल नियमित करावनो वहां ज्यादा न रहे तो मिसरी भोग धरनी। सज्जन पुरुष को तो इतनो इसारो ही काफी है बहुत कहेते कहा है ताते अलम् इतनो ही बहुत है।

यह जो लेख आदिक श्रीगोस्वामि बालक और वैष्णवन को प्रयास है सो केवल पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त दृढ़ होय वे के ताहीं है अथवा यह प्रयास अपनायत मान दैवीजन कहे यह तो उपदेश रूप है तासूं अपन सर्व वैष्णव समान है।

यह प्रयास हूँ केवल स्नेह के बस होय कर रहे है वैष्णवन को भलो होय, सिद्धान्त पै आरूढ़ होंय तब ही श्रीमहाप्रभु जी की प्रसन्नता होय, तब पुष्टि फलदान करें भक्त सेवा करें। या प्रयास को पर्यवसान तत्सुख सेवन में ही है ताते सबन को माननीय है।

ले• दासानुदास ताराचन्द के भगवत्स्मरण

श्रीमाधुरीकुन्ज—श्री महाप्रभुजी की बैठक

(सेवा ही पुष्टि का मुख्य धर्म है)

श्री हरिराय महाप्रभु ने उसी समय यह जान लिया था कि पुष्टि के मुख्य धर्म श्री कृष्ण की सेवा में वाधक नये नये विरोधी पैदा होंगे उनसे बचने के लिये एक ग्रन्थ लिखा है। जिसका "दुःसङ्ग विज्ञान प्रकार निरूपण" नाम रखा है— ४१ श्लोकों में ४१ शिक्षापत्रों का तत्व कह दिया है। और बैष्णवों को सेवा विमुख लोगों से बचने की बड़ी भारी चेतावनी दी है। जो अवश्य ही ध्यान में रखनी चाहिये।

"अथ भक्तानां दुःसङ्ग निरूपण विज्ञान प्रकार निरूपणम्"

श्रीकृष्णाय नमः।

अथ श्रीवल्लभाचार्यकृपया स्फुरितं हृदि।
स्वीयानामभ्रमार्थाय किञ्चिदत्र निरूप्यते ॥ १ ॥
दैवासुर विभागेन द्विधाजीवाः प्रकीर्तिताः
बंधमोक्ष व्यवस्थापि गीतायामेव रूपिता ॥ २ ॥
दैवेष्वपि च जीवेषु यदंगीकरणं पुनः
भक्तिमार्गे त एवात्र प्राप्स्यन्ति पुरुषोत्तमम् ॥ ३ ॥
तत्रापि भेदो विज्ञेयो मर्यादा पुष्टिभेदतः
मार्गे फलेपि विज्ञेयो भक्ति मोक्ष विभेदत ॥ ४ ॥
भक्तावंगीकृत्य भावे दैवानामपि सर्वथा
काम निष्काम भेदेन स्वार्ग मोक्षौ न संशयः ॥ ५ ॥

विज्ञेयं वरणं भक्तौ तदर्थित्वैककार्यतः
तदर्थित्वं च विज्ञेयं भजनार्थप्रवृत्तितः ॥ ६ ॥
तदादौ शरणं गच्छेन्महापुरुषयोगतः
महापुरुष पारोक्ष्ये तन्निष्ठैरपि सर्वथा ॥ ७ ॥
तत आश्रय संसिद्धौ सेवार्थं स्वां समर्पणम्
समर्पणे जीव देह स्तत्सन्बन्धवतामपि ॥ ८ ॥
ब्रह्मसम्बन्धतः कृष्णसाक्षात्सम्बन्धयोग्यता
ततस्तत्सेवया स्वीय सर्वस्व विनियोगतः ॥ ६ ॥
गृहीतः परमानन्द निधिः कृष्णोऽक्षयः स्वतः
अतस्तु सावधानित्वं विधेयंभगवज्जनैः ॥१०॥
संप्राप्तनिधिभिश्चौर वंचकेभ्यो विशेषतः
चौरास्तु द्विविधाज्ञेया वाह्याभ्यन्तरभेदतः ॥११॥
वाह्याः कुटुम्बरूपा ये तेतु वित्तहराः स्मृताः
यतस्तद्विनियोगेन वित्तं याति समर्पितम् ॥१२॥
आंतराः कामलोभाद्याश्चित्तं मात्राहरास्तुते
यतो वहिर्मुखं चित्तं सेवायां प्रविशेन्नहि ॥१३॥
चित्तवित्तैकसाध्याहि सेवा चापि न सिद्धयति
तदभावेऽखिलं व्यर्थं पुरुषार्थं परिक्षयात् ॥१४॥
अतो विवेकधैयादि शास्त्रयुक्तैस्तथा पुनः,
अन्तरास्ते निराकार्या वाह्यास्ते तु यथाक्रमम् ॥१५॥
सेवा कारण तद्रोध परित्यागादि साधनैः,
वंचकस्तु ततोप्येष दुष्ट इत्येव वुध्यताम् ॥१६॥

यतस्तदाकृतिश्चेष्टा तथाऽऽचारश्च भाषणम्
विनयः सततावेशः शंखचक्रादि चिन्हितः ॥१७॥
एवमाद्यखिलं तुल्यं भगवद्धर्मवर्तिभिः
ततो ज्ञानाभावतोपि सर्वथा नाशनं मतम् ॥१८॥
दुर्घटं तस्य विज्ञानं सर्वथा भक्तसाम्यतः
अत एव न कर्तव्यो विश्वासो ह्यविचारितः ॥१९॥
तदीयत्व भ्रमात्तस्मिन्विश्वासे सङ्गदोषतः
असत्यपि च सद्भावात्पतनं भक्तिमार्गतः ॥२०॥
अतएवोक्तमाचार्यैर्गुरोरपिच वीक्षणम्
कृष्णसेवापरंवीक्ष्येत्यादिपद्ये निबन्धगे ॥२१॥
नन्वेतस्य परिज्ञानं कथं भवति सर्वथा
ज्ञाने सति परित्यागः कर्तव्योस्य सतांभवेत् ॥२२॥
भवेच्च चौर विज्ञानं शास्त्रतो धर्मदर्शनात्
नहि वंचक विज्ञानं साम्यतो भगवज्जनैः ॥२३॥
न कोपि तादृशो धर्मो वैलक्षण्याव बोधकः
मृगाणामिव साधूनां मृगयोरिव गायने ॥२४॥
अतोपि किंचिदाधिक्यं वंचके तु प्रतीयते
प्रदर्शनार्थत्वतस्तु वेशादेरिह सर्वथा ॥२५॥
गृह संवासतो ज्ञेय इति चेत्तन्न युज्यते
संसर्गे बुद्धिनाशेतु मोहान्नज्ञान संभवः ॥२६॥
ज्ञानाभावे भवेदेव तत्क्रिया सार्थका खिला
संसर्गमात्रतो नाशे कस्य ज्ञानोदयो भवेत् ॥२७॥

न ज्ञापयति चात्मानं यावन्नाशं स वंचकः ।
नाशयित्वैव भवति निजरूपं समास्थितः ॥२८॥
मार्गस्थितेर्भवत्येव तादृशोत्यन्त बाधकः
बलान्न मारत्येष प्रबोध्यैव च घातकः ॥२९॥
छल बुद्धि विनाशाय न बलं यस्य साधनम् ।
अज्ञातः सर्वथा हिंस्रो ज्ञातो नैव हि बाधकः ॥३०॥
ज्ञानं त्वशक्यं तस्येति न निस्तारः कथञ्चनः ।
इति चेत्तत्र सिद्धान्त उपायः परिकीर्त्यते ॥३१॥
भगवद्भक्तसाम्येऽपि तदसाधारणो गुणः ।
निरपेक्षत्व मेतस्मिन् तदभावाद्धि वंचकः ॥३२॥
अनाकारित एवासौ संगे लगति सर्वथा ।
प्रार्थिता भगवद्भक्ताः कृपयन्ति कथञ्चन ॥३३॥
स द्रव्य मेव विज्ञाय सज्जते स्वार्थ मोहितः ।
दीनेषु भगवद्भक्ता स्तदर्थैक प्रसादकाः ॥३४॥
चालयत्ययमुन्मार्गे माया चाटुक सूक्तिभिः ।
ते तु मार्गे चालयन्ति वचोभिः कटुकौषधैः ॥३५॥
एवं विज्ञाय बुद्ध्यैव वैलक्षण्यं हि वंचके ।
तत्संगं तत्र सद्भावं तन्माहात्म्यं परित्यजेत् ॥३६॥
अन्यथा मार्ग निष्ठोपि विनाशं प्राप्नुयान्नरः ।
अत एवास्मदाचार्यै रुक्तं स्वीय कृपालुभिः ॥३७॥
पाखण्डप्रचुरे लोके कृष्ण एव गतिर्मम ।
अन्यत्रा प्युक्तमेवं हि शिक्षा पद्ये सुसर्वथा ॥३८॥

प्रवाहिकास्ते पि चेत्स्युरुपेद्यै वोस्थिता तदा ।
एवं विज्ञाय सततं स्थेयं वै सावधानिभिः ॥३६॥
सेवापरैः कथासक्तैः सत्संग परिशोधकैः ।
वाह्य व्यापार रहितै भर्गवद्भावभावुकैः ॥४०॥
दैन्य मात्र परिश्रान्तैरसदालाप वर्जितैः ।
श्री कृष्ण दर्शनाद्यार्तैं निजाचार्याश्रिता श्रितैः ॥४१॥

इति श्रीहरिदास विरचितं भक्तानां दुःसंग विज्ञान प्रकार निरूपणं सम्पूर्णम् ॥

❀ श्री राधामाधवो जयति ❀

अथ दुःसंग विज्ञान प्रकार निरूपण की टीका

१—अब श्री बल्लभाचार्य महाप्रभु की कृपा से जो हृदय में स्फुरित हुआ है उसे अपने पुष्टिमार्ग वालों को समझाने के लिये यहाँ निरूपण करते हैं।

२—जीव दैव और असुर विभाग से दो प्रकार के कहे हैं और इन दोनों प्रकार के जीवों के बन्ध और मोक्ष की व्यवस्था भी गीता में निरूपण की गई है।

३—और दैवी जीवों में भी पुनः भक्तिमार्ग में जिनका स्वीकार है केवल वे ही इस जगत् में पुरुषोत्तम को प्राप्त होते हैं।

४—यहाँ भक्तिमार्ग में भी मर्यादा और पुष्टि इन नामों के भेद जानने फल में भी पुष्टिमार्गियों की सेवा और मर्यादा मार्गियों को मोक्ष यह दो भेद समझने हैं।

५—दैवी जीवों का भी सब प्रकार से भक्तिमार्ग में अङ्गीकार न होने के कारण सकाम और निष्काम इन दो भेदों से स्वर्ग और मोक्ष मिलते हैं इसमें सन्देह नहीं है।

६—वह परमात्मा ही जिसमें अर्थ रूप है वह एक कार्य से भक्तिमार्ग में अङ्गीकार समझना। और वे प्रभु ही जिन के अर्थ रूप हैं—ऐसा होने के लिये भक्ति के निमित्त प्रवृत्ति आरम्भ करने से जानना उचित है।

७—जिस समय भगवद्भजन में प्रवृत्ति हो प्रारम्भ में किसी विद्वान् महापुरुष के द्वारा प्रभु के शरण जाना। यदि वैसा योग्य कोई महापुरुष समीप में नहीं हो प्रभु में एक निष्ठा वाले अथवा जिन्होंने किसी महापुरुष के द्वारा प्रभु का शरण प्राप्त किया है ऐसे भक्तों के द्वारा शरण जाना चाहिये।

८—तत्पश्चात् प्रभु का दृढ़ आश्रय सिद्ध होने पर श्रीभगवान की सेवा के निमित्त आत्म निवेदन करना। जीव देह तथा इनके सम्बन्ध वाले पदार्थों को भी प्रभु के समर्पण होने पर ब्रह्म के साथ सम्बन्ध होने से श्रीकृष्णचन्द्र के साक्षात् सम्बन्ध की योग्यता प्राप्त होती है।

९—इससे प्रभु सेवा द्वारा अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पित किया गया होने के कारण परम आनन्द के भण्डार रूप अविनाशी श्रीकृष्ण प्रभु स्वतः हस्तगत हुए जानना। अर्थात् व्रजेन्द्रनन्दन अब तुम्हारे हाथ में आ गये।

१०—अतः जिनको सेवा द्वारा श्रीकृष्णरूप निधि (खजाना) प्राप्त हुआ है—उन भावुकों को इधर उधर भटकाने वाले चोर

और ठगों से अपने माल धन की खूब सावधानी से रक्षा करते हुए बचना चाहिये।

११-१२—चोर भी दो तरह के हैं एक बाहिर के दूसरे भीतर के, बाहिर के चोर कुटुम्बी रिश्तेदार सगे सम्बन्धी हैं क्योंकि इन के लिये खर्च होजाने के कारण प्रभु को समर्पण किया हुआ धन नष्ट हो जाता है।

१३-१४—भीतर के चोर काम क्रोध लोभ मोह इत्यादि हैं, वे तो केवल चित्त के हरण करने वाले हैं क्योंकि प्रभु से विमुख चित्त सेवा में प्रवेश नहीं करता है। और वास्तविक में जो केवल चित्त और द्रव्य से सिद्ध कर सकते हैं, इस प्रकार की सेवा भी सिद्ध नहीं होती। सेवा के अभाव में सेवा रूपी पुरुषार्थ के नष्ट होने पर सब कुछ व्यर्थ हो जाता है।

१५—अतएव विवेक धैर्यादि शस्त्र वाले तथा फिर सेवा के कारण रूप में स्थित चित्त का निरोध और सम्बधियों का त्याग इत्यादि साधन सम्पन्न भगवदीयों को क्रमशः उन कामादि आन्तर चोर और कुटुम्ब रूपी बाह्य चोरों को दूर करना उचित है।

१६-१७-१८—अब तीसरे वंचकों का वर्णन करते हैं जो इन दोनों से भयङ्कर हैं। क्योंकि इनका दिखाव इनकी चेष्टा, इनका आचार और भाषण विनय शांति प्रभुमयता का आवेश शंख चक्रादि मुद्राओं से अङ्कितता इत्यादि समस्त भगवद्धर्म पालन करने वालों के समान होते हैं। जिससे इनकी पहिचान न होने के कारण

सर्वथा ये नाश के करने वाले माने गये हैं अर्थात् मार्गीय होकर मार्ग विरुद्ध ले जाते हैं।

१६-२०—ये मार्गीय वंचक सब प्रकार से भक्तों के समान दिखाई देने के कारण उनका पहिचान लेना कठिन है क्योंकि अन्य मार्गीय नहीं हैं। इसलिये बिना विचार किये किसी का विश्वास न करना। इस प्रकार के वंचकों में भगवदीयता के भ्रम से विश्वास करने पर संग दोष से और दुष्ट को भी यह साधु पुरुष है ऐसा मानने से भक्ति मार्ग जो सेवा मार्ग है उससे अन्याय खिलवाड़ में पड़ कर नीचे गिर जाता है।

२१—इसलिये श्रीवल्लभाचार्य चरण ने तत्वार्थदीप निबंध में "कृष्ण सेवा परं वीक्ष्य" यह पद जिसके आरम्भ में है गुरु की भी पूर्ण परीक्षा करने को कहा है, अर्थात् गुरु भी सेवा के और दूसरे उपांगों में ले जाता हो तो यथार्थता के त्याग में गुरु को भी त्याग दे या पहिले समझ ले।

२२-२३—अब इस वंचक की यानी मार्गस्थ होकर सेवा मार्ग से अलग ले जाने वाले विरोधी की पहिचान पूर्ण रूप से कैसे होती है। (इसके कर्त्तव्य सभी पुष्टि विरुद्ध होंगे क्योंकि अन्य संप्रदायों के धर्मों को प्रचार कर पुष्टि धर्म का लोप करना ही जिसने अनेक उपदेशों से निश्चय किया है) धर्म विरोधी ऐसे धर्मध्वज ठगों की अगर पहिचान होजाय तो सत्पुरुष इनका त्याग कर सकें। और चोर की पहिचान शास्त्रों से धर्म के दर्शन से होती

है किन्तु भगवदीयों के जैसे दिखाई देने से इन अपने धर्म विरोधी वञ्चकों की पहिचान नहीं होती है।

अन्त में लिखते हैं कि सेवा परैः—यानी जो वैष्णव पुष्टिमार्ग में सेवा धर्म को ग्रहण किये हुए हैं उनको सेवा सम्बन्धी भावों से अन्य मार्गीय नाम कीर्तनादि में ले जाने वाले कोई भी क्यों न हों यानी गुरु भी हो उसे भी वंचक ही समझना चाहिये क्योंकि इस ग्रन्थ में ऐसे विरोधियों का वर्णन प्रत्यक्ष ही है श्रीहरिराय जी ने स्पष्ट शब्दों में उनका वर्णन किया है। अनेक प्रमाण आडम्बरों से अपने धर्म को न्यून करके अन्य मार्ग के धर्मों को विशिष्टता देनी और उसके द्वारा अपनी प्रशंसा का लाभ प्राप्त करना सर्वथा वञ्चकता है। अतः वैष्णवों को चाहिये कि वे परम्परागत श्रीमहाप्रभु जी श्रीगुसांईजी आदि आचार्यों के सर्वतोभावेन प्रत्येक ग्रंथरत्न में लिखे हुए तथा नित्य अनुभव में लाये हुए सेवा मार्ग से बिचलित न होंगे।

श्रीभागवत रत्न श्रीहनुमान प्रसादजी पोद्दार द्वारा प्रकाशित

"त्याग से भगवत्प्राप्ति"

ले०—श्री जयदयालजी गोइन्दका—

अपने जीवन का परम कर्त्तव्य मानकर परम दयालु सब के सुहृद् परम प्रेमी अन्तर्यामी परमेश्वर के गुण प्रभाव और प्रेम की रहस्यमयी कथा का श्रवण मनन और पठन पाठन करना तथा आलस्य रहित होकर उनके परम पुनीत नाम का उत्साह पूर्वक ध्यान सहित निरन्तर जप करना।

ले०-बे० शा० सं० उमरेठ निवासी शास्त्री ज्येष्ठाराम हरजीवन जोशी
अध्यापक-पुष्टिमार्गीय संस्कृत पाठशाला पाटण (गुजरात)

(अष्टाक्षर निरूपण)

तस्य कुत्रापि नो दुःखं सुखं सर्वत्र सर्वदा
अहोरात्रं जपेन्नित्यं गुरूणां मन्त्र मुत्तमम् (१४)
तंहि दृष्ट्वा त्रयो लोकाः पूताःस्युः किमु मानवाः
मध्ये च सर्व मन्त्राणां मन्त्र राजोत्तमोतमः (१५)
इदमेव परैकान्ते भक्तिमान् यः सदा स्मरेत्
ऋद्धिः सिद्धिर्गृहे सत्यं कृष्णतात्पर्य सुन्दरम् (१६)
भक्तानां हितकार्यार्थे ज्ञातव्यं स्वजनोत्तमम्
वेदवाक्ये महावाक्यं पुराणे भारते तथा
श्रीमद्वल्लवाक्यार्थं श्रीकृष्णःशरणं मम
इतिश्रीमद्विट्ठलेश्वर विरचितं अष्टाक्षर निरूपणं समाप्तम् ।

* टीका *

उसको कोई स्थान में दुःख प्राप्त नहीं होता है। सदा सर्वत्र सुख ही मिलता है। जो रात्रि दिवस सम्पूर्ण मन्त्रों में इस महा मन्त्र का जप करता है उसको देखकर तीनों लोक पवित्र होते हैं मनुष्य की तो बात ही क्या है, सब मन्त्रों में उत्तमोत्तम और मन्त्रराज अष्टाक्षर है, इस महामन्त्र को एकान्त में श्रद्धा पूर्वक जो भक्तिमान पुरुष सदा जप करता है उसके घर में सत्य ही ऋद्धि

सिद्ध प्राप्त होती हैं। सुन्दर श्रीकृष्ण तात्पर्य रूप श्रीअष्टाक्षर की स्वकीय भक्तों के हित का उत्तम पुरुष श्री आचार्य चरण ने कृपा की है। अर्थात् अपना अनुभव अपने दैवी जीवों के उद्धारार्थ आप ही दान किया है जो कि श्रीकृष्ण का तात्पर्य है वेद पुराण महाभारत प्रभृति शास्त्रों में जो महावाक्य हैं वे ही श्रीआचार्य चरण श्रीवल्लभाधीश के महावाक्यार्थ रूप श्री कृष्णशरणंमम रूप वाक्य है। अर्थात् वेद पुराण महाभारत प्रभृति में श्री प्रभुमन्त्र बिना कोई उत्तम मन्त्र प्रतिपादन किया नहीं। अतः उन तत्वों का भी सार यह अष्टाक्षर महामन्त्र वेद संमत ही प्रकट किया है।

जम्बुसर वाले श्री करसनदास जयसिंह भाई सबजज का भाषण

मन्त्र यानी क्या ?

यह महामन्त्र भूत का मन्त्र मच्छ का मन्त्र बीछू का मन्त्र वगैरह मन्त्र जैसे तामस हैं वैसा नहीं है। परन्तु मनन करते हुए तदनुकूल वर्तन करने योग्य सात्विक उपदेश है। कोई भी अनुभवी मनुष्य अपने सम्बन्धियों को अपने अनुभव का फल रूप गुप्त उपदेश दे उसका नाम मन्त्र।

जो मन्त्र मिला उसे तोते की तरह खाली मुख से बोलता रहे और मन्त्र का लक्षार्थ हृदय में रखकर उसके अनुकूल न चले तो उसको उस उपदेश का लाभ बिल्कुल नहीं मिलता है।

ऐसे उपदेश को मन्त्र कहने का कारण कि विशेष या थोड़े शब्दों में उपदेश भरा हुआ है और उस उपदेश को हमेशा हृदय में धारण कर मनन करना चाहिये जिससे प्रत्येक शरीर के अङ्गों में व्याप्त होकर दृढ़ होजाय। ऐसे देह का वर्तन मन्त्र में समाया हुआ उपदेश प्रत्येक भाव में दृढ़ होने से यानी मन मन्त्र के उपदेश के साथ तादात्म्य पाने से अपना बर्ताव मंत्रवत् तदनुकूल हो जाता है। यह मन्त्र शब्द का अर्थ और उसका यथार्थ उपयोग है।

'आप इसमें प्रश्न करोगे कि क्या अष्टाक्षर मंत्र गुरुने दिया है वह जप नहीं करना चाहिये—और क्या व्यवहार करने को उपदेश हुआ है। और गुरु जो जप का फल बतलाते हैं वह सत्य है या मिथ्या।

जब जबाव है कि गुरु के वाक्य मिथ्या नहीं हैं सत्य हैं और यह भी नहीं कह सकते कि जप नहीं करना चाहिए। परन्तु हमारा कहना है कि जप करते हुए लक्षार्थ का—ध्यान जरूर रखना है। अष्टाक्षर मन्त्र के अर्थ का मनन करने से उस का भाव अन्तःकरण में धीरे-धीरे दृढ़ होता चला जायगा।

एकान्त में स्वस्थ वैठकर चित्त को स्वस्थ कर अष्टाक्षर

मंत्र के लक्षार्थ को मनन करने में विचारे कि यह जगत्, वासुदेव रूप है जीव उसके अंश हैं और मैं अंश होने के कारण उस परमात्मा की शरण हूँ। ऐसी वृत्ति अहर्निश रखा करे तो अन्तःकरण तदाकार हो जाय तो सत्वगुणी की वृद्धि हो जावे।

जे जेनुं चिंतन करे ते ते मय थई जाय
प्रभुचिंति प्रभुमयथंवु कीट भृङ्ग ने न्याय।

इस नियम के अनुसार अष्टाक्षर मंत्र के अन्तरङ्ग अर्थ का जप करने से यानी अहर्निश अन्तर अर्थ दृष्टि के आगे रखने से उसी के अनुसार स्वरूप भाव बन जायगा। इस तरह करने से अपने चैतन्य के साथ मंत्र चैतन्य का योग हो जाता है। और व्यवहार से अनुकूल बन जाता है। बाहिर का बर्ताव अन्तर के बर्ताव को पुष्टि बनाता जाता है। जैसे एक दूसरे को मदद करता जाता है। इसलिये दोनों उपयोगी हैं—प्रश्न, यदि ध्यान करेंगे तो जप नहीं होगा और जप करेंगे तो ध्यान कैसे—उत्तर इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इस जप से कहाँ तक ध्यान तथा शरण प्राप्ति हुई। प्रथम करने से दैवी सम्पत्ति का उदय देखने में आवेगा। दूसरे से दैवी सम्पत्ति के गुणों का अविर्भाव होगा और—आसुरी संपद तथा उसके गुणों का तिरोभाव हो जायगा।

और जैसे-जैसे यह दैवी आसुरी का अविर्भाव तिरोभाव होगा वैसे-वैसे ही शरण भावना सिद्ध होती जायगी और

शरण मंन्त्र की सिद्धि हुई—समझनी। और इस प्रकार सिद्ध न हो तो समझो कि मन्त्र का लाभ नहीं मिला। और जानना चाहिये कि मन्त्र का बराबर जप नहीं किया है। किसी औषधि को लेने के लिये वैद्य ने कहा है किन्तु ज्वर हटाने को कुनाइन लेना यह अति उत्तम उपाय है। ऐसा डाक्टर ने कहा और उसकी बात हमने मानी किंतु कहाँ तक, जब तक कि कुनाइन शरीर में पाचन न होय, वहाँ तक कुनाइन लेने से बुखार जाता है।

किन्तु कुनाइन लेने से बुखार जाता है इस बात को बार-म्बार बोलने से या जप करने से क्या बुखार जायगा, कभी नहीं जा सकता। किन्तु कुनाइन योग्य रीति से ज्वर में लेनी चाहिये। और अच्छी तरह पाचन होकर रुधिर में प्रवेश करे तो ज्वर के जन्तु नष्ट हो जावें—अन्यथा नहीं। न खाकर वैद्य के पास जाकर कहे कि कुनाइन लिया परन्तु बुखार नहीं गया—सुन-कर वैद्य भी संशय में पड़ जाय कि ज्वर का अमोघ उपाय कुनाइन थी फिर क्या बात हुई जो इसे आराम नहीं हैं और जिसने वह कुनाइन विधि पूर्वक ली है परहेज किया और नियम से रहा है उसका ताप अवश्य ही शान्त होगा। और सुख प्राप्त होगा।

वैसे ही अष्टाक्षर महामन्त्र जो एक अमोघ रसायन रूप औषधि है उसे लेकर पाचन की हुई सिद्ध तब जाननी कि उससे फल रूपी दैवी सम्पद रूपी सम्पूर्ण गुणों का आविर्भाव हो और आसुरी

सम्पत्ति नष्ट प्राय हो जाय इससे दैवी जीव-"सर्वभूत हितेरताः इस श्री गीता जी के दैवी जीवों के लक्षण के अनुसार संपूर्ण जीवों को भक्ति और मुक्ति की प्राप्ति कर सकें।

महाशयो! अब आपको विश्वास हुआ होगा कि अष्टाक्षर मन्त्र जिसमें श्रीकृष्ण शरण यानी प्रभु शरण अर्थात् समर्पण कर अति उत्तम उपदेश भरा हुआ है उसको सदा हृदय में धारण कर उसका मनन करने से और तदनुकूल वर्ताव उपरोक्तभावनानसार करने से स्वयं सुखी होकर तथा औरों को सुखीकर दोनों ही श्री प्रभु परमात्मा के परमधाम को प्राप्त होते हैं। और पाते हैं।

पुष्टिरत्न, श्रीमान् प्रभुदयाल जी मीतल "ब्रज साहित्य प्रकाशक" तथा सूरदास ने श्री आचार्य जी सों विनती कीनी जो महाराज! मैं कछू भगवत् लीला समुझत नाहीं हूँ, तब श्री आचार्य जी श्रीमुखते कहे। जो सूर! श्री यमुनाजी में में स्नान करि आवो, जो हम समझाय देंगे। तब सूरदास प्रसन्न होय कें श्रीयमुनाजी में स्नान करिकें अपरस ही में श्रीआचार्य जी पास आये। तब श्री आचार्य जी ने कृपा करिकें सूरदास कों नाम सुनायो ता पाछें समर्पण करवायो। पाछें आप दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका करी हती सो सूरदास को सुनाये अष्टाक्षर मन्त्र सुनायो तासों सूरदास के सगरे जन्म के दोष मिटाये और सांत भक्ति भई।

नोटः—अष्टाक्षर मन्त्र—इस मन्त्र द्वारा पुष्टि सम्प्रदाय की—दीक्षा दी जाती है।

ले०—अनेक ग्रंथ प्रकाशक पुष्टि प्रकाश रत्न श्री जेठालाल गोवर्द्धन
शाह एम० ए०

[अष्टाक्षर मन्त्रार्थ निरूपण से उद्धृत]

शरणागत की आवश्यकता

श्रीसुबोधिनी जी

"वस्तुतो हि जीवोभगवत्सेवको भूत्वा वहुकालं तत्सेवाम-कृत्वा स्थित इति स्वधर्म परित्यागेन अधर्मो भवति। तद्दर्शनानन्तरं वन्दनेनैव निवर्तते ततस्तदनन्तरं भगवदीयानां मुखाद्भगवन्माहात्म्य श्रवणं तत्सर्वं वस्तुषु याथात्म्यज्ञापकमिति तदज्ञान कृतं पापं मूल भूतमिति निवर्तते। ततो ज्ञाते माहात्म्ये यदनुत्तणं भगवत अर्हणं पूजनं सत्कार इति यावत्। तद्भगवन्मायारूपं वा कल्मषं निबर्तयति तदर्हणं हि प्रतिपत्ति रूपम्॥

अर्थात्—वास्तव में तो यह जीव भगवान का सेवक था, किंतु बहुत समय तक उसने सेवा नहीं की इस प्रकार "स्वधर्म परित्यागेन" अपने सेवा धर्म के परित्याग से उस जीव को अधर्म प्राप्त हुआ। किन्तु वह अधर्म प्रभु के दर्शन के पश्चात्-दंडवत् प्रणाम करने से समाप्त हो जाता है फिर दर्शन वन्दन के पीछे भगवदीयों के मुख से श्रीभगवान् की लीला कथा का श्रवण करना, जिससे समस्त पदार्थों में यथार्थ का ज्ञान हो जाय। अज्ञान से प्राप्त मूल पाप

नष्ट हो जाता है, जैसे ही भगवान् की महिमा का ज्ञान हुआ वैसे ही भगवान् का अर्हण यानी सेवा सत्कार होता है, वह सेवा भाव मायारूप तथा पापों को दूर कर देता है, यही सेवा शरणागति का यथार्थ स्वरूप है।

ले०—पुष्टि सुधाकर जेठालाल गोवर्द्धन दास शाह एम० ए०
(अहमदाबाद)

मू०—श्रीकृष्ण कृष्ण कृष्णेति कृष्ण नाम सदा जपेत्
आनन्दः परमानन्दो वैकुण्ठं तस्य निश्चितम् (१)

श्री अष्टाक्षर महामन्त्र श्री कृष्ण शरण का मन्त्र है पुष्टिमार्ग में श्रीकृष्ण ही सेव्य हैं इस कारण पुष्टिमार्गीय भगवद्भक्तों को श्रीकृष्ण चरण कमल का स्मरण करना चाहिये और उनके नाम का जप करना चाहिये, वह जप कोई यज्ञ योगादि क्रियाओं की तरह निर्दिष्ट समय में करने का नहीं किन्तु अहर्निश नाम का रटन होवे। यहां नाम का जप करना चाहिये किन्तु जल्प नहीं, आजकल तो लोग जल्प ही करते हैं बोले ही जाते हैं पर ऐसा तो नहीं होना चाहिये। जप इस शब्द में इसका भावार्थ रहता है कि वाह्य इन्द्रियों को वाहिर के पदार्थों में से खेंचकर इसका स्मरण करना चाहिये, विषयी चित्त को श्रीप्रभु चरण में लगाना। इस तरह वाह्य वस्तुओं के विचारों को दूर कर पूर्ण शान्ति से और परम प्रसन्नता से एकाग्र वृत्ति धारण कर, 'जिसको याद करते हैं

उसे मूर्तिमान् दृष्टि के समक्ष रख कर शरणमन्त्र का जप करना। श्री महाप्रभुजी "भक्तिवर्द्धिनी" में आज्ञा करते हैं कि "अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः" पूजा तथा श्रवणादि व्यापार से निवृत्त होकर श्रीकृष्ण का भजन करना चाहिये। वास्तव तो में अष्टाक्षर मन्त्र का जप सतत चालू रहना चाहिये। एक बार भी मन यदि भजन तथा नाम स्मरण से दूर हो तो पाप भागी बन जाता है जो शास्त्रों में कहा है वह तो इस समय के जीव व्यापार व्यवसाय में लगे हुए हैं उनकी प्रतिक्षण एकाग्र वृत्ति कैसे रह सकती है, नही रहती है इससे हर समय न बने तो जितना अनुकूल समय मिले उसका विनियोग श्रीकृष्ण नामोच्चारण के जप करने में हमेशा करना चाहिये। यह सदा शब्द का भावार्थ है। इस पर एक दृष्टान्त है कि श्री नारदजी ने श्री भगवान् से पूछा कि आपका बड़ा भक्त कौनसा है? नारद जी स्वयं बनना चाहते थे किन्तु आपने आज्ञादी कि मदनपुर में मधुसूदन किसान है, नारदजी ने उसे देखा-वह तो सवेरे से ऐसा मग्न हो रहा जिसे थोड़ा भी अवकाश नहीं किन्तु सर्व कर्म से निश्चिन्त हो रात्रि में दीनता पूर्वक एक घड़ी श्री कृष्ण का नाम स्मरण कर सो जाता था। श्रीनारदजी ने श्रीहरि से सारी कथा सुनाई और कहा कि बस एक घड़ी स्मरण करने वाले की इतनी प्रशंसा करते हैं कि वह सबसे बड़ा भक्त है। तब प्रभु ने आज्ञा दी कि नारदजी देखो एक काम करो तब हम समझें यह तेल का सकोरा भरकर जल्दी जल्दी हमारे भवन की चार परिक्रमा लगा आओ ध्यान

रहे कि तेल एक बूँद भी पृथ्वी में न गिरे और न मेरा स्मरण ही बन्द हो नारदजी ने कहा यह कौन कठिन है, शीघ्र ही तेल का भरा हुआ बर्तन लेकर ज्योंही जल्दी चलना चाहा, तेल उछलने लगा, तब तो नारदजी अत्यन्त ध्यान पूर्वक शनैः शनैः चार परिक्रमा कर आये किन्तु भगवन्नाम को एक दम भूल गये, जब प्रभु के पास आवे तो आप श्री ने पूछा कि नाम स्मरण क्यों छोड़ दिया, तब नारदजी ने कहा महाराज ! थोड़ा भी ध्यान जो इधर उधर जाता तो इस में तेल नहीं बच सकता था सभी फैल जाता। तब आपने कहा नारद ! बस इसी तरह समझलो तुम चार परिक्रमा में ऐसे हो गये उसे चार पहिर घर को कुटुम्ब की चिन्ता रहती है उससे मुक्त होकर अगर वह एक घड़ी नाम लेता है तो समझना कि जीवन में विजय कर लिया क्योंकि जीव को संसारी झंझटों से अवकाश कहाँ है अगर शान्ति पूर्वक मन को एकाग्रकर मेरा स्मरण थोड़ा भी करले बहुत ही उत्तम है।

भावुक मुखिया चन्द्रभानु जी

(गुलाल कुण्ड जतीपुरा)

प्रभु के नाम कूं गाय कें उच्चारण करनो यह भक्ति कैसी है कि कुल्ला करे भये गडहे के जल के समान है, वामें स्नान नहीं होय सके, छींटा भी पड़े तो और उलटो अपवित्र करे सो जल भेद में श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करें हैं।

वेश्यादि सहिता मत्ता गायका गर्त संज्ञिताः
जलार्थ मेव गर्तास्तु नीचा गानोप जीविनः (जलभेद)

(जल भेद का टीका)

ऐसे ही गायक श्री कृष्ण के गुण को गान करे हैं सो हू महात्म्य जानि कें नहीं करें हैं किन्तु उत्तम स्पष्ट और गीत के वश होय कें करे हैं तासूं बिनको भाव खाड़ा के जल की नांई कलुषित गिन्यो जाय हैं।

'सूर कहे कूटते दूर बसिये सदा जमुना जी को नाम लीजै जु छानै'

तासों गुप्त ही मंत्र को गुप्त रस एकान्त में ग्रहण करनों। जैसे श्री गंगाजल हू नीच के पात्र में अपवित्र होय तासूँ या (अष्टाक्षर) मन्त्र के विषें-गायन कीर्तन पद्धति सर्वथा सम्प्रदाय विरुद्ध है। एकान्त में ग्रहण करनों सुख को मूल है। चौड़े में पुकारे तो भावना प्रकट होय और सर्वथा रस जाय यह मार्ग की पद्धति है।

"नाम निरमोल नग का कोई ले सके भक्त राखत हिये हार करकें" भगवान् में प्रीति होय सोई नाम लेनों परन्तु प्रकट करे तो अक्षर ही अक्षर रह जाय। रस चल्यो जाय।

निवेदन पन्नालाल शास्त्री

गोकुल (मथुरा)

आचार्य चरण प्रतिपादित "सिद्धान्त समुच्चयानुसार" श्री अष्टाक्षर महामन्त्र के समान दूसरो कोई मंत्र नहीं है। यामें यह खूबी है कि यह महामन्त्र साधन तथा फल उभयात्मक है,

एवं अति गोप्य है तथा वैष्णवों को परम सर्वस्व मानते भये अति गोप्य तया जप करवे योग्य है ।

(जप का प्रसङ्ग)

"जो श्रीमहाप्रभु जी ने मार्ग प्रकट करयो है ते गुप्त मार्ग है श्री गोपीजनन को सो ब्रह्मादिक शिवादिकन के ध्यान में नहीं आवे है । कर्म में वेद में याको बन्धन नहीं यह तो श्री गोपीजन के चरणारविन्द में तो भक्ति मार्ग प्रकट भयो है सो प्रेम की पराकाष्ठा प्रेमलक्षणा भक्ति है ताते अष्टाक्षर पञ्चाक्षर कोई कूं सुनायवे लायक नहीं है गुप्त मन्त्र हैं । भवदीय वर्णन करत हैं ताते निवेदनी के सङ्ग चिन्तवन करनों अन्य के सङ्ग करे तो पातकी होय । याको अनेक ग्रंथन में वर्णन है । श्रीमहाप्रभु जी श्रीगुसांईं जी गुप्त रीति सों मेंड के भीतर देत हैं । और मार्ग में जो भगवत् नाम लेत हैं सो अवधूत कहावत हैं तिनको वर्णन भ्रमर गीत में "भिक्षुचर्यांचरन्ति" यामें है ।

सूर सागर में लिख्यो है

"कञ्चन कांच कपूर कटुक खरी एक सङ्ग क्यों तोलौ ।"

दोसों वामन में नागजी भाई की वार्ता में हैं । कि याकूं गुप्त राखनौ । रामदास जी की वार्ता में "इतराश्रयणं गजराज-धृतो पिचरासभ मप्युररी कुरुते ।"

यह मार्ग पतिव्रतन को है पति को नाम कभी भी बाहिर प्रकाश नहीं करे भीतर में जानें और सतत स्मरण करे यही प्रधान कर्तव्य है । "स्त्री में जब कामदेव को आगमन होत है तब वाको

लज्जा आवत है सगरे अङ्गन कों ढांकत है वस्त्रन सों वाणी सों वाकी शोभा उदय होत है और वही स्वरूप रसिकन को जीवन है। जब कामदेव चल्यो जाय तब सार हीन होय खुलाशा नीरस डोलत है। कछू कार्य्य की नहीं न वाको कोऊ नाम लेत है। तैसी ही प्रकट करने में भगवत् नाम को रस निकल जाय तब नीरस मुक्ति को पतौवा जो मुक्ति के समान है जात है।

"मूरी के पातन के बदले को मुक्ताफल देय"

(श्रीसूरदास जी)

तैसें ही जितनों नाम ढाकनो तितनों फल है जब नाम को रस लग्यो तब ही शरणागति है, जिनने ब्रह्म सम्बन्ध और अष्टाक्षर प्रकट कियो वे पातकी हैं। (कीर्तन)

ऊधो धन तुमरो व्यवहार

धनि वे ठाकुर धनि तुम सेवक धन धन परसन हार

आम कों काट बंबूर लगावत चन्दन की करे वार

शाह को पकर चोर कों छोड़त चुगलन को इतवार

सूरदास कैसें निबहैगी अन्ध धुन्ध सरकार (१)

निवेदकः—

द० मयाराम खुद दंडौती धार वारे की यह सम्मिति है कि प्राण चले जाँय तोहू अष्टाक्षर प्रकट न करनो।

सेवा की चरम स्वरूपावस्था में ग्रहण और त्याग

यदि मधुमथन त्वदंघ्रिसेवा,

हृदि विद्धाति जहाति वा विवेकी
तदखिलमपि दुष्कृतं त्रिलोके
कृतमकृतं न कृतं कृतंच सर्वम्
(पद्यावली)

अर्थात् हे मधुमथन ! जो ज्ञानी हृदय में आपकी सेवा का ग्रहण व त्याग करे उसमें क्रमशः सेवा करने वाले ने तो समस्त क्लेशों को त्याग दिया तथा जो कुछ मानव जन्म का कर्तव्य था सभी कर लिया और सेवा त्यागी ज्ञानी ने समस्त क्लेशों को निमन्त्रण दे दिया एवं जो भी जीवन का फल था उससे एक साथ विमुखता प्राप्त करली अतः पहले माहात्म्य ज्ञान रूप सीढ़ी पर चढ़कर दृढ़ भक्ति के नित्य महल में स्नेह पौलिया से दीनता पूर्वक अपनी रसात्मक सेवा लालसा को प्रकट कर श्रीगुरु रूपा सखी के साथ से नित्य सेवा रस का आस्वाद करता रहे ।

लेखक

देवकीनन्दन गोस्वामी

साहित्य रत्न

श्री जयदेव पीठ–श्रीवृन्दावन

श्री कृष्णाय नमः ।

देववन्ध भारतवर्ष में श्रीमज्जगद्गुरु श्री वल्लभाचार्य

प्रकटित पुष्टि मार्ग प्रसिद्ध है। यह मार्ग वेद गीता श्रीमद्भागवत प्रतिपादित है। इसे अनुग्रह मार्ग भी कहते हैं।

जीव पर जब आचार्य श्री कृपा करते हैं तब वह इस मार्ग का अनुयायी होता है। इस मार्ग का सुन्दर स्वरूप श्री गोपीजन में स्फुट है। इस पवित्र मार्ग का अधिकार आचार्य श्री के द्वारा नाम और निवेदन मंत्रद्वय द्वारा प्राप्त होता है।

यह मार्ग अत्यन्त गोपनीय है। इसमें मुक्ति को भी तुच्छ माना है, यहां तो "कृष्ण धारामृता स्वाद ही सिद्ध है।" इस अमृत का आस्वादन गोपीजन के सिवाय और किसी को प्राप्त नहीं है। यदि ब्रज सीमन्तिनीजन की कृपा हो तो उद्धव की भांति जीव को भी प्राप्त हो सकता है। ये ब्रजाङ्गनाये—

(रासपंचाध्यायी)

"तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिका:
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागराणि सस्मरु:

जब तक अहन्ता ममता विद्यमान हैं और दैन्य नहीं है तब तक निरोध सिद्ध नहीं होता है। इस मार्ग के नाम-निवेदन मन्त्र भी गोपनीय हैं। अत: उनका उच्चारण प्रवाही सृष्टि के समक्ष करना रस की निष्पत्ति में बाधक है। यह बात तदीय वैष्णवों से छिपी नहीं है।

निवेदक :—

महामहोपदेशक—श्रीधर शर्मा
पुष्कर निवासी

—※(:✕:)※—
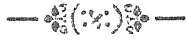
इस प्रकरण में आचार्य विद्वद्वर्ग तथा प्राचीन शास्त्रों के
आधार पर 'पुष्टिमार्गीय मुख्यधर्म स्वरूप सेवा"
की प्रमुखता तथा अष्टाक्षर मन्त्र गौण
है और एकान्त में स्मरणीय है, यह
बात सिद्ध हुई है।
साथ के परिशिष्ट में कलकत्ता के अनन्य सेवा-
धिकारि वैष्णवोंकी सेवा में निष्ठा,
प्र० सम्पादक परिचय एवं
निम्नलिखित वर्णित
है।

श्रीगोवर्द्धननाथोजयति

पुष्टि मार्गीय मुख्य धर्म

स्वरूप सेवा

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे
रूपनाम विभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः ॥१॥
नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धिशायिनम् ।
लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् ॥२॥

परम भगवदीय भाग्यवान् वैष्णववृन्द !

आज हम पुष्टि मार्गीय वैष्णवों के लिये श्री आचार्य जी महाप्रभु की आज्ञानुसार एवं आपश्री के कुछ समय पश्चात् होने वाले आचार्यों के उपदेशानुसार शुद्धाद्वैत पुष्टि मार्गीय प्रधान कर्तव्यधर्म "भगवत् सेवा" के सम्बन्ध में दो शब्द कहने का साहस करते हैं।

यद्यपि भगवान् के श्री चरणों में लगाये गये किसी भी भाव द्वारा जीव का उद्धार हो सकता है। जैसे—

गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषात् चैद्यादयो नृपाः ।
सम्बन्धाद् वृष्णयः कृष्णे यूयं भक्त्या वयं विभोः ॥३०॥

श्रीमद्भागवत सप्तम स्कंध प्रथमाध्यायः ।

यह वाक्य श्री नारदजी का श्री युधिष्ठिरजी के प्रति है।

अर्थात् काम (प्रेम) से गोपीजन, भय से कंस, शत्रुता से शिशुपालादि राजा लोग, सम्बन्ध से यादव और पाण्डव तथा भक्ति से हम सब ऋषिमुनि, भगवान् ने अंगीकार किये हैं ।

इतना होते हुए भी अपने अपने सम्प्रदाय में स्व स्व आचार्यचरणों के द्वारा दिये हुए उपदेश भक्तों के कल्याण साधक हैं। यथा—श्री कृष्णचैतन्यमहाप्रभुजी के सम्प्रदाय में श्री कृष्णसङ्कीर्तन ही सर्वतोभावेन मुख्य धर्म है। उसी प्रकार श्री वल्लभाचार्य महाप्रभुजी के शुद्धाद्वैत पुष्टि मार्ग में सदा सर्वदा श्री कृष्ण सेवा ही मुख्य धर्म है।

जैसे पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म अर्थ काम मोक्ष) सभी सम्प्रदायों में अपने अपने भाव के अनुसार वर्णित हैं किन्तु आचार्यचरण ने उनका अलौकिक रूप से वर्णन किया है। यथा—

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो ब्रजाधिपः।
स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन ॥१॥

अर्थात्—श्री महाप्रभुजी आज्ञा देते हैं कि—सर्वदा सर्वभाव (बाल्य पौगंड कैशोरादि) से श्रीकृष्ण की सेवा ही करनी चाहिये।

(यहाँ भजनीय वाक्य "भजसेवायाम्" धातु से सिद्ध हुआ है अतः इसका अर्थ सेवा ही समझना चाहिये) इससे इतर हमारा कोई भी कहीं भी धर्म नहीं है।

यदि कहें कि जो सेवा ही करते रहें तो सेवा के लिये अर्थ की आवश्यकता पड़ेगी, तब उत्तर देते हैं—

एवं सदास्म कर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति।
प्रभुः सर्वसमर्थोहि ततो निश्चिन्ततां ब्रजेत् ॥२॥

जब तुम अपना धर्म पालन करोगे तब वे प्रभु अपना धर्म (सेवक का मनोरथ पूर्ण करना) स्वयं ही करेंगे। क्योंकि भगवान् तो "कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम्" समर्थ हैं। इस कारण उनकी सेवा को ही अपना मुख्यलक्ष बना करके चिन्ता का परित्याग कर देना चाहिये।

प्र०—यदि किसी प्रकार की शंका हो कि मन में

मनोरथों का समुदाय तो बहुत है कैसे पूर्ण होगा। तब कहते हैं।

यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि
ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि ॥३॥

अर्थात्—श्री गोकुल के नाथको जो कहीं तुमने मनवचन देह से हृदय में धारण कर लिया तो समझलो अब कोई भी लौकिक वैदिक मनोरथ बाकी नहीं रहा। जैसे—

श्री मद्भागवत में श्रीकरभाजनजी का वाक्य है।

देवर्षि भूताप्तनृणां पितृणां,
न किङ्करो नायमृणीच राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं,
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कृत्यम् ॥४१॥अ० ५-११

अर्थात्—श्री मुकुन्दरायजी के चरणों का आश्रय पाने पर मनुष्य देवता ऋषि पितृश्वरों के ऋण से मुक्त हो जाता है।

यदि कहें कि मुक्ति का साधन क्या है ? मनोरथ तो लगे ही रहते हैं—तब श्री आचार्यजी पुष्टि फल का वर्णन करते हैं।

अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वरपादयोः।
स्मरणं भजनं चापि न त्याज्य मिति मे मतिः ॥४॥

इस कारण मुक्ति के इच्छुक को सर्वात्मभाव द्वारा निरन्तर श्री कृष्ण की सेवा और स्मरण कभी नहीं छोड़ना चाहिये। और सर्वात्मभाव की सिद्धि मन के निरोध होने पर ही होती है। क्योंकि मन की चञ्चलता से इन्द्रियाँ वहिर्मुखता की व्यर्थ चेष्टाओं में लगकर भगवद् भाव को व्यक्त कर देती हैं और भगवान् कहते हैं कि "परोक्षं च ममप्रियम्" अर्थात् छिपा हुआ भाव ही मुझे प्रिय है। अतएव सर्वात्मभाव वही है जिसमें भक्त अपनी सब क्रियाओं को भगवत् आश्रित बनाकर "भगवान् को श्रम न हो" ऐसी भावना करता हुआ सेवा करे। यही आचार्य जी की आज्ञा है क्योंकि "मोक्षः कृष्णांघ्रिलाभः—श्री कृष्णचरण सेवा ही वास्तव में मोक्ष है ॥४॥

यहाँ स्मरण जो लिखा है यह जप का वाचक है जो हृदय में किया जाता है किन्तु पुष्टिमार्गीय जप हुआ या सेवा सभी भावात्मक हैं और सभी गोप्य हैं।

पुष्टि में सेवा स्मरण की ही प्रधानता है। तीसरा

प्राधान्य कीर्तन को मिला है जो अष्टसखाओं की एवं अन्य भगवदीयों की वाणी द्वारा गाये जाते हैं।

कीर्तन और जप यह एक वस्तु नहीं है। कीर्तन वह है जो सुमधुर गायन ताल स्वर रागों के साथ उच्च स्वर से सप्तस्वरों में एवं छन्दोवद्ध पदावलियों में किया जाता है।

और जप वह है जो काशीस्थ विद्वद्वर श्री गिरिधरजी महाराज अष्टाक्षर की टीकामें लिखते हैं कि—"श्रीगुसांईजी (विट्ठलनाथजी) की आज्ञा है जो "सदा जपेत्" सो जप नाम गोप्य कोहे ताते नाम ऐसे जपिये जो होठ फरकें नहीं और शब्द कोई सुनें नहीं काहेते जो श्रीकृष्ण नाम है सो अत्यन्त गूढ़ रसमय पदार्थ है। चारो वेदको परम-रहस्य है। श्री स्वामिनीजी और श्रीआचार्यजी को रहस्य महाअलौकिक अष्टाक्षर महामन्त्र है ताते सदा गोप्य-जानिकें जप करनों।" पत्र ५, पंक्ति ५ अष्टाक्षर टीका पं० विष्णुदत्त के प्रबन्ध से विक्टोरिया प्रेस में मुद्रित बनारस सं० १६६१। इससे सिद्ध होता है कि अष्टाक्षर का जप सर्वथा ऊँचे स्वर से पुकार कर नहीं करना चाहिये।

इसका प्रमाण "मनुस्मृति" में भी लिखा है।

विधियज्ञाज्जपयज्ञोविशिष्टोदशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥८-२५॥

अर्थात् विधियज्ञ होम से उच्चारण किया हुआ जपयज्ञ दशगुना श्रेष्ठ है। उससे उपांशु सौगुना श्रेष्ठ है और मानस जप हजार गुना श्रेष्ठ है ॥ ८-२५ ॥

इस कारण आचार्य चरण ने इसे गौण (अप्रधान) रखकर सेवाकी ही मुख्य आज्ञा दी है जैसे—

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेवं सततं स्थेयमित्येव मे मतिः। ६ (नवरत्न)

अर्थात् सर्वात्मभाव से निरन्तर "श्रीकृष्णः शरणं मम" यह सेवा में भी बोलते ही रहना चाहिये।

और "मंत्रिगुप्तभाषणे"—धातु के अनुसार मंत्र का अर्थ गुप्तभाषण है। इससे स्पष्ट है कि निरन्तर मनुष्य मन में ही बोल सकता है। अगर उच्चस्वर से ही बोलता रहे तो कुछ घंटों के बाद थक जाने के कारण उच्चस्वर से बोलना उसे बाध्य होकर बन्द करना पड़ेगा। यह आपत्तियाँ मनसा जप किया जावे तो कभी भी नहीं आ सकती हैं।

और इसमें सततं जो कहा है उसका अर्थ निरंतर है किन्तु आठवें पन्द्रहवें दिनों में या महीने ६ महीने के अन्तर से किया हुआ सततं नहीं कहलाता, इसका स्पष्टीकरण इस वार्ता में है।

श्रीगोविन्द कुंड की बैठकको चरित्र १३ वीं बैठक

"तहाँ श्री आचार्य जी आप तीन दिनलों बिराजे और श्री भागवत को पारायण किये : तब कृष्णदास मेघन ने कही कि महाराज श्री गिरिराज जी में व्यापि वैकुंठ सुनें है ताको दर्शन हमकूं करवाओ। यह सुनिकें आप चुप करि रहे, पाछें दो घडी दिन बाकी रह्यो हतो ता समय गोविन्द कुंड के समीप श्री गिरिराज के ऊपर आप बिराजे हते। तव कृष्णदास मेघन कों अंगुरिया करके बताये जो बुह शिला दीखे है ताकों उठाय—ताके भीतर कन्दरा निकसेगी, वा कन्दरा के भीतर तू चल्यो जइयो। तहां व्यापि वैकुंठ को दर्शन होयगो। तब कृष्णदास तहाँ जायके देखें तो एक कंदरा है वा कंदरा में चल्यो गयो सो तीन दिनलों चल्यो, तहां इनकों व्यापि वैकुंठ को तथा लीला सामग्री को दर्शन भयो।

पाछें कुंड पर एक शुक देख्यो सो वह अष्टाक्षर मंत्र को उच्चार करे तब कृष्णदास ने तीन बेर श्री कृष्णस्मरण कियो। तब वाने ३ बेर जल में चोंच बोर कें जल पियो। फिर भगवत् नाम को उच्चारण करवे लग्यो, तब कृष्णदास को निद्रा आय गई तब गोविन्दकुंड ऊपर आय ठाडो भयो, देखे तो घडी दोय दिन चढ्यो है। कृष्णदास ने विनती करी जो महाराज वह पक्षी कौन हतो। तब आप कहे जो वह सारस्वतकल्प को शुकहतो, वाकों श्रीस्वामिनीजी ने श्रीकृष्णनाम पढायो हतो, सो इतने दिन वह माधुरी के वृक्ष ऊपर बैठकें भगवन्नाम लेतहतो, और वह माधुरी कुंड है तामें जल नहीं पीवतो, जो नाम में अन्तराय पडेगो। तेने तीनबेर भगवन्नाम लियो वाने तीनबेर चित्तदे जलपान कियो। जीवकों भगवन्नाम में ऐसी आसक्ति होनी चहिये।" इस वार्ता से सतत का अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

और स्मरण सेवा का अंग है। जैसे कि एक दूसरा प्रसंग है कि—जिस समय श्री महाप्रभुजी श्री जगन्नाथ धाम में विदाई लेवे कूं श्रीजगन्नाथरायजी के पास पधारे

तब किवाड बन्द हो गये। श्री महाप्रभुजी श्री जगन्नाथ-राय जी दो ही भीतर रहे। तब श्री जगन्नाथरायजी नें आज्ञा दीनी कि "आपने जो सेवा मार्ग प्रकट कियो सो मोकूं बहुत प्रिय है। अब अपने वंश द्वारा सेवा मार्ग को प्रचार विस्तार पूर्वक प्रकट करो १ और जो तुमने "श्रीकृष्ण प्रेमामृत" ग्रंथ कियो है सो हमारे प्रियभक्त श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजी कों देउ २ और रसिकाचार्य श्री जयदेव महाप्रभु कृत गीतगोविन्द ग्रंथ को प्रचार अपने मार्ग में करो।"३

इससे सेवा की आज्ञा जो श्रीजगन्नाथरायजीने प्रदान की। उसे ही श्रीआचार्य जी महाप्रभु ने अपना निश्चय सिद्धान्त मानकर स्थापित किया।

श्री विट्ठलनाथ जी (श्रीगुसांईजी) नवरत्न की टीका में आज्ञा प्रदान करते हैं।

"नित्यं इति नैरन्तर्यमुच्यते अन्यथा कालेनासुरधर्म प्रवेशः स्यात्। अन्तःकरणेऽतथाभावे वा तथा वदनमावश्यकम् इति ज्ञापयितुं सततमेववदद्भिरित्युक्तम्। एवं सति लोकशिक्षापि आनुषङ्गिकी सिद्धयति। एवमुक्तप्रकारेण सेवा परतयास्थेयम् इत्यर्थः।" (नवरत्न प्रकाशः)

अर्थात् इस कथन के अनुसार सेवा करता हुआ जप

करता रहे। इससे लोक शिक्षा भी सहज हो जावेगी। और—

"सेवा कृतिर्गुरोराज्ञा वाधनं वा हरीच्छया।
अतः सेवा परं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्। ७।

"एवं सति गुर्वाज्ञाया अवाधने वाधने वा सेवा एव मुख्या इति। ऐसा होने पर यदि गुरु आज्ञा में बाधा भी पड जाय फिर भी सेवा ही मुख्य है।

अष्टाक्षर निरूपण ग्रंथ में भी आज्ञा है—

अहोरात्रं जपेन्नित्यं गुरूणां मंत्र मुत्तमम् ॥१४॥
तं हि दृष्ट्वा त्रयोलोकाः पूताः स्युः किमु मानवाः।
मध्ये च सर्वमंत्राणां मंत्रराजोत्तमोत्तमः ॥१५॥
इदमेव परैकान्तभक्तिमान् यः सदाजपेत्
ऋद्धिःसिद्धिर्गृहे सत्यं कृष्णतात्पर्यसुन्दरम् ॥ १६ ॥

इसको उत्कृष्ट एकान्त भक्ति वाला जो जीव सदा जपता है उसके घर में ऋद्धि-सिद्धि आती हैं। इसी का धोल (गुजराती कीर्तन) इस प्रकार है।

श्री अष्टाक्षर का ५२ वां धौल।

षट् दशमा अष्टाक्षर नो गुप्तते जप थायजो,

(धोल की ३८ वीं कड़ी)

श्री नवरत्न का धोल—श्री व्रजभूषणजी म० कृत

श्रीकृष्णः शरणं मम" सदाजपोजी न विसारसो पल एकमात्र

२० वीं कडी

इस वर्णन से सिद्ध है कि सम्प्रदाय के गुरु श्री महा-
प्रभु जी का दिया हुआ अनन्त सिद्धिरूप भगवत्सेवा का
अङ्ग यह "श्रीकृष्णः शरणं मम" उत्तमोत्तम महामंत्र है।
इसका जप अहोरात्र एकांत में करना चाहिये।

श्री गो० गोकुलनाथजी (चतुर्थलाल जी) के
वचनामृत ११ तथा १६ में भी यही आज्ञा है।

(वचनामृत ११)

अपने गुरु ने मंत्र दियो होय अष्टाक्षर पंचाक्षर
तिनको जहाँ तहाँ पात्रबिना प्रकाश न करनो।

(वचनामृत १६)

और जप करे सो काहू सों जतावे नहीं। जप भाव
सो अत्यन्त गोप्य है और शास्त्र में कहे जो ऐसें करनों
तो अष्टाक्षर रंचक हू खुले नाहीं या भाव सों भीतर अनुभव
करतही जप करनों और गोमुखी की माला ऊपर काढनों
नाहीं। और सुमेर को उल्लंघन न करे अन्यथा लीलाते
बाहिर परे जप को फल तिरोधान होय। जप में बोलनो

नहीं, न देह मन को चंचल करनो, नेत्र मूंदे रहै। जप और सेवा कों लौकिक साधन न जानें। कदाचित् लौकिक जानें तो वाकों प्रभु जप न करावें, और प्रतिबंध होय इत्यादि। यह वचनामृत का ग्रंथ सन् १८८३ जुलाई में मुंशी नवलकिशोर। मालिक अवध समाचार की आज्ञा-नुसार मुम्बई उल उलूम शिलायंत्र से छपा है।

इससे गद्यमंत्र और "अष्टाक्षर" दोनों ही गोप्य हैं फिर भी गद्य पंचाक्षर अपरस में और अष्टाक्षर सब अवस्था में जप करने की आज्ञा है।

इसी प्रकार २५२ की ७५ वीं वार्ता में रामदास जी ने श्रीगुसांईजी से दीक्षित होकर आपकी आज्ञानुसार अष्टाक्षर पंचाक्षर का एकान्त में जप किया, यह प्रसंग भी श्री गोकुलनाथजी के द्वारा वर्णित हैं।

श्री हरिरायजी महाप्रभु जिन्होंने सैकड़ों ग्रंथ निर्माण किये हैं किन्तु कहीं भी अष्टाक्षर कीर्तन का वर्णन नहीं किया। एक विख्यात ग्रंथ आप का शिक्षापत्र है, जिसके पत्र-पत्र में सर्वत्र सेवा की भावना भरी हुई है। क्योंकि इस ग्रंथ के निर्माण का लक्ष यह है, कि आपके छोटे भाई

श्रीगोपेश्वरजी की बहूजी लीला में पधारनेवालीं थी। आपने यह बात पहिले से ही जान ली और विचार किया कि भाई का मन बहुत दुःखित होगा, सेवा में प्रतिबंध पडेगा। इसके लिये अनेक दृष्टान्त देकर सेवा में सावधान करने के लिये ४१ पत्र भेजे थे वही ग्रंथ शिक्षापत्र है। इस ग्रंथ में से कुछ संकेत करते हैं।

"सेवापि कायिकी कार्या निरुद्धेनैव चेतसा
दैहिकं कर्म निखिलं प्रभुसेवोपयोगिनाम् ॥ २ ॥
यथोपकरणादीनां रक्षा तद्वद् विधीयताम्
भार्यादिष्वनुरागोपि सेवा हेतुक एव हि ॥ ३ ॥

(प्रथम शिक्षापत्र)

टीका—सेवा श्रीठाकुरजी की अपने देहसों करनी, और काहूसों न करावनी। जो कदाचित् अपने शरीरसों सब सेवा न होय आवे। अपने श्रीठाकुर जी को श्रमहोत होय तो सहाय के लिये और सूं हूं करावनी। पुष्टिमार्गीय वैष्णव होय तथा अपने कुटुम्ब में समर्पनी होय तासूं करावनी। अवैष्णव सों सेवा सर्वथा न करावनी। और जहांलों जितनी सेवा अपने देह सों बने तहाँ लों और सूं न करावनी। आलस्य करिकें लौकिकावेश न करनों।

अपनी कायासूं श्रीठाकुरजी की सेवा करे, तो शरीर इन्द्रिय मन सब श्रीठाकुरजी के सन्मुख होंय। भगवत् सम्बन्ध ते बहिर्मुख न होय।

ताते अवश्य अपने शरीर सों नियम सहित भगवत्सेवा करनी यह नियम राखनों, जो इतनी सेवा करि कें लौकिक वैदिक कार्य खान पान करनों। जा भांति जैसी प्रीति सों खानपान को नियम है तैसी प्रीति सों सेवा जो वैष्णव को मुख्यधर्म है, सो नियम करिकें करनी यह दास को धर्म है। जो मैं सेवा बिना कैसे रहूं या प्रकार मनमें विचारिकें ज्ञान करि मन कूं समझावनो। और लौकिक वैदिक अनेक ठौर मन भटकत है तहाँते मनको निरोध करि सेवा करे।

प्रथम तो मन को निरोध राखे, जो मन लौकिक वैदिक में जाय तो भगवत्सेवा में उद्वेग होय, तव सेवा में ते श्रद्धा घटि जाय, ताते मन को निरोध करनो। सेवा सम्बन्धि कार्य बिना बोलनो नाहीं। लौकिक वाणी कहे तो मुखरता दोष होय। सेवा में भगवद् भावरूपी रस को

तिरोधान होय, ताते मिथ्यावाणी को निरोध करे, तैसे ही मिथ्या क्रिया को निरोध करनो।

भगवत्सेवा के समय लौकिक वैदिक कार्य कछु आय परे सो सर्वथा न करनो। जो सेवा सम्बन्धि कार्य छोडिकें वैष्णव और कार्य करे, तो वह कार्य हू सिद्ध न होय लौकिकावेश होय। या प्रकार मनवाणी क्रिया ये तीन्योन को लौकिक वैदिक ते निरोध करि भगवत्सेवा करे। और दैहिक लौकिक वैदिक कर्म बहुत हैं, सो यह संसार में रहि कें न करे तौ संसार में अपकीर्ति होय, सेवा में प्रतिबन्ध होय, ताते लौकिक वैदिक कार्यहू लोगन के दिखायवे के लिये करे, श्रीठाकुरजी की सेवासों पहुँचिकें अनोसर में आसक्ति बिना करे। या प्रकार प्रभु के अंगीकार योग्य वस्त्र सामग्री करे ॥ ३ ॥

पाकादिक सामग्री की रक्षार्थ और श्रीठाकुजी की सेवार्थ सर्व कार्य करें। या प्रकार वैष्णव सेवा करे तो प्रभु अनुभव करावें। जो भार्या (स्त्री) भगवत्सेवा में सहाय होय तो सेवा भलीभाँति होय। या भाँति भगवत्सेवार्थ भार्या (स्त्री)ताहू में अनुराग (स्नेह) राखनो।

अपने विषयादिक के अर्थ अनुराग सर्वथा न करे। तामें स्कंद पुराण तथा श्री रामायण को दृष्टान्त कहत हैं।

महादेवजी की स्त्री सती हती सो वानें महादेवजीको कह्यो न मान्यो और श्रीरामचन्द्रजी की परीक्षा लेयवेकूं श्रीजानकीजी को स्वरूप धर्यो सो वार्ता महादेवजी ने जानी सो महादेवजी तो भगवद्भक्त हैं ताते वाही समय सती को त्याग कियो पाछें सती अपने पिता दक्षप्रजापति के यज्ञ कनखल में अपनो देह भस्म करि हिमाचल के गृह में प्रकट भई। तहां अनेक तपस्या कीनी तोहू महादेवजी को मन सती पर प्रसन्न न भयो। तब श्री ठाकुरजी ने महादेवजी सों कह्यो जो तुम मेरो इतनो कह्यो करो पार्वतीकों अंगीकार करो तब महादेवजी पार्वती कों व्याहि के अपने घर ले आये तव पार्वती ने भगवत्लीला महादेवजी सों पूछी तब प्रसन्न भये।

ताते वैष्णव होयकें लौकिक विषय के अर्थ स्त्री पर प्रसन्न होय नहीं भगवत्सेवार्थ अनुराग करे। जा प्रकार भगवत् सेवा भलीभाँति सों होय सोई करनो या भाँति सेवा होय तो लौकिक हू करिये॥ ४॥

इस प्रकार श्रीहरिरायजी के शिक्षापत्र का लक्ष समझ लीजिये। शिक्षापत्र घर-घर में है तथा इन भावनाओं से परिपूरित हैं। प्रायः साढ़े छैसौ श्लोक के इस ग्रंथ में श्रीहरिरायजी ने—

अष्टाक्षरमहामंत्रकीर्तनेन विशेषतः।
पंचाक्षरेण मंत्रेण तदीयत्व विभावनात्॥ शिक्षा. २३ श्लोक १२

इस एक श्लोक में ही अष्टाक्षर महामंत्र को कीर्तन के द्वारा बोलने की आज्ञा दी है। और इसमें विशेषतः वाक्य का सम्बन्ध पंचाक्षर के साथ है अतः अष्टाक्षर महामंत्र कीर्तनेन यह उक्ति एक साधारण सी पड़ जाती है। परन्तु कोई विशेषतः का सम्बन्ध अष्टाक्षर कीर्तन के साथ करते हैं। उनके लिये हमारे पास काशी के वैष्णव रामकृष्णदास नागर का छपा हुआ पत्र आया है उससे ही इस श्लोक का भाव स्पष्ट हो जाता है कि इसका कीर्तन कब करना चाहिये।

जैसे—एक वयोवृद्ध वैष्णव रुग्ण शैया पर कफ, वात, पित्त से जकड़े हुए कराह रहे थे। और उनके आत्मीय वर्ग उनकी खाट के पास बैठे थे। उनका पुत्र उनके रोग

शोक निवारणार्थ उनके समीप बैठकर नाम जप मन में कर रहा था। एकाएक वृद्ध ने कष्ट पूर्वक पुत्र से श्रीकृष्णः शरणं मम जोर से कहने को कहा। पुत्र ने सोचा कि हमें तो पिताजी ने नाम मंत्र मन में जपने का ही आदेश दिया था और आज ऐसी आज्ञा क्यों देने लगे। खैर अपने एकत्रित आत्मवर्ग से सलाह कर सब के सब श्रीकृष्णः शरणं मम रागसहित सुमधुर कंठ से जप करने लगे जिससे वृद्ध को आनन्द प्राप्त हुआ और उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये। मानों वे सच्चिदानन्द मदनमोहन के चरणों का ध्यान कर रहे हों। मगर लोगों को यह भास हुआ कि नींद में आ गये हैं सो अपने को जोर से न बोलना चाहिये। उन्हें अब शान्ति से पड़े रहने दो। ऐसा विचार कर लोग अपने कामों में लग गये और मंत्र जप बन्द सा हो गया। एक दो मिनट की निःशब्दता के उपरान्त वृद्ध ने बड़े जोर से कहा—क्या उच्चारण करने की शक्ति हमारी तरह तुम्हारी भी चली गई या हमारा मरण समय समझ कर हमारे लिये शोक या चिन्ता करने लगे। अरे यह शरीर तो क्षण भंगुर है। इतना कहना

और उनका "श्रीकृष्णः शरणं मम" कह कर साथ ही साथ प्राण छोडना हुआ।

नागरजी ने "कीर्तनेन विशेषतः" का अर्थ कैसा सुन्दर भावपूर्ण कहा है और वास्तव में ठीक भी है। जब मृत्यु शय्या पर जीव पड़ा हो उस समय जोरों से कीर्तन करना उपयुक्त है।

जब शरीर में सेवा करने की सामर्थ्य ही नहीं है, उस स्थिति में ऐसा होना ठीक ही है। लौकिकासक्त आर्त्त मनुष्य अपने सम्बन्धियों को अति क्लेशावस्था में पुकारता है और भक्त के तो भगवान् ही सब कुछ हैं। अतएव वह व्यक्ति अपने प्राण प्रेष्ठ श्री भगवान् को ही पुकारता है। जिससे कि जीव में आसुरावेश न आजावे, अन्यथा अन्तिम समय की भावना के अनुसार मनुष्य की गति हो जाती है। ऐसे विशेष अवसरों पर अगर मंत्रोच्चारण उच्चस्वर से हो जावे तो कोई बात नहीं है वह आपद्धर्म है। विशेष अवसरों की घटनाओं को सामान्य रूप कभी नहीं देना चाहिये। श्रीमहाप्रभुजी से श्रीहरि रायजी पर्य्यन्त के बालकों ने कहीं पर भी अष्टाक्षर मंत्र

को जोर से वैष्णवों द्वारा नहीं बुलवाया क्या उन्हें इस मंत्र का प्रचार अभीष्ट नहीं था ? अन्यथा अष्टाक्षर मंत्र के जोर से उच्चारण करने में कितना अनर्थ हो जाता है। जैसे श्रीगोकुलाधीशजी के वचनामृत में १५ वां वचनामृत

"एक समे श्रीनाथजी के यहां परदेशते कोई उत्तम सामग्री आई सो भगवदिच्छाते अनजाने सों वा सामग्रीकूं प्रसादी हाथ लग गयो। तब टीकेत कूँ बड़ो शोच भयो जो ऐसी उत्तम सामग्री श्रीनाथजी के विनियोग में न आई। तब टीकेत ने और प्राचीन बृद्ध स्वरूप विराजत हते विन के आगे कही। तब बृद्ध स्वरूपन ने ऐसो निर्धार कियो, जो छोटे छोटे बालकन कूँ सामग्री के पास पधराय के भगवन्नाम को उच्चारण करवाओ, तब अष्टाक्षर को उच्चारण कियो। तव बृद्ध स्वरूप हते तिनने कही जो सामग्री छुवाय गई। अब गायन कों खवाय दो। तब टीकेत ने विनती करी जो जै जै याको कारन नहीं समझे। तब बृद्ध स्वरूप ने आज्ञा करी, जो जैसे अष्टाक्षर को उच्चारण कियो तैसे श्रीमहाप्रभुजी श्रीगुसांईजी को नामोच्चारण करते तो सामग्री नहीं छुवाती ॥१॥

इससे यह सिद्ध हुआ कि मंत्र क्या वस्तु है। जहां तक शरीर स्वस्थ हो इन्द्रियाँ सब अपना-अपना धर्म निर्वाह करती हो तब तक सेवा ही करनी चाहिये। जैसे श्री हरिरायजी की आज्ञा है कि—

एवं विधं फलं नित्यं चिन्तयन् चेतसा सदा।
कुर्यादत्यादरं कृष्णसेवायामेव सर्वथा ॥ शि० १ श्लो० १२

इससे पहिले कई श्लोकों में सेवा का वर्णन करते हुए आज्ञा देते हैं कि—"पूर्व कह्यो ताप्रमाण भगवत्सेवा में नित्य अविनाशी फलकों चित्तसों निरन्तर विचार करत प्रभु सेवा में ही अति आग्रह पूर्वक आदर करे (१२) टीका—ऐसे पुरुषोत्तम फलात्मक तिनको चिन्तवन चित्त में सदा सर्वकाल कियो करे तो कबहू अन्य सम्बन्ध न होय। जो नित्य स्मरण न करे तो अन्य सम्बन्ध होय ताकरि आसुरी बुद्धि होय जाय। ताते ऊपर कहे ताही प्रकार दैन्य सों क्लेश आतुरता संयुक्त चिन्तन करे। और अति आदर पूर्वक भगवत्सेवा करे। लौकिक में दिखायवे के लिये प्रतिष्ठार्थ भगवत्सेवा न करे। पुष्टि मार्गीय वैष्णव को मुख्य धर्म यही है। दास्य भाव सों फल सर्वोपरि जानि सेवा करे अति आदर पूर्वक सदा सेवा करे (यह

न विचारे जो आजु नाही सेवा करी तो कालि करूंगो) परन्तु नित्य नियम पूर्वक अपने देहकों अनित्य जानि देह इन्द्रिय को सुख सब छोड़ि कें भगवत्सेवा करे यह सर्वोपरि सिद्धान्त है ॥ १२ ॥ हम कहाँ तक लिखेंगे एक "कीर्तनेन विशेषतः" इस श्लोक को छोड शिक्षापत्र के पत्र-पत्र में एवं श्रीहरिरायजी ने अपने अन्य ग्रन्थों में कहीं कीर्तन माहात्म्य वा वैसी बात तक नहीं आने दी निरीक्षण करें, सर्वत्र श्रीभगवत्सेवा का ही आग्रह है और शरण की भावना करना ये लिखा है। भावना करना मानसिक धर्म है इन्द्रियों का नहीं। यह ग्रंथ श्रीआचार्य जी महाप्रभु के षोडश ग्रन्थों की टीका ही समझना चाहिये। क्योंकि श्रीमदाचार्य चरण भी सिद्धान्त मुक्तावली में आज्ञा करते हैं।

नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम्।
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परामता ॥१॥
चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।
ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम् ॥२॥

अर्थात्—श्री हरि को प्रणाम करके हम अपने सिद्धान्तका निश्चय निर्णय वर्णन करते हैं कि श्रीकृष्णसेवा

सदासर्वदा कर्तव्य है। और मन लगाकर की हुई मानसी सेवा फलरूप सेवा कहलाती है। अथवा ध्यान द्वारा सिद्ध हुई मानसी परासेवा कहलाती है ॥१॥

चित्त को प्रभु में पिरोना अर्थात् लवलीन कर देना ही सेवा है। और उसकी सिद्धि के लिये तनुजा वित्तजा यानी तन धन से मन लगाकर भगवत्सेवा करे। ऐसा करने से संसार के दुःखों से छुटकारा हो जाता है। और श्री कृष्ण का यथार्थ स्वरूप जानने में आ जाता है। प्रभु अपना स्वरूपानुभव सेवा द्वारा जीव को प्रदान कराते हैं ॥२॥

श्री पृथुर्वाक्यम्—

यत्पाद सेवाभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितं मलं धियः।
सद्यःक्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदाङ्गुष्ठविनिःसृता सरित्
॥३१॥ भा० अ० २१ स्कं० ४

प्रल्हाद—

नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्याज्जन्तोर्यथात्म सुहृदो जगतस्तथापि
संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादःसेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम्
॥२७॥ श्लो० अ० ९ स्कं० ७

सामान्य प्राणी की तरह यह ब्रह्मादिक देवता हैं यह अधम असुर है किन्तु यह विषम दृष्टि आप में नहीं है।

क्योंकि आप जगत के आत्मा एवं प्रिय हो। तो भी कल्पवृक्ष की तरह आपकी सेवा करने से आपका हमारे ऊपर अनुग्रह होता है उसमें जो फल मिलता है यानी स्वरूपानुभव होता है वह सेवा के अनुसार ही मिलता है, इसलिये उस फल में विषमबुद्धि पैदा नहीं होती है ॥२७॥

तत्तेर्हत्तम ! नमः स्तुति कर्म पूजाः कर्मस्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम्
संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं भक्ति जनः परमहंसगतौ लभेत
॥५०॥ अ० ६ प्रल्हाद

हे पूज्यतम ! आपकी सेवा के ६ अङ्ग हैं—नमस्कार, स्तुति, सर्वकर्मों का समर्पण, सेवा पूजा, चरणकमलों का चिन्तन और लीला कथा का श्रवण। इस षडङ्ग सेवा के बिना आपके चरणकमलों की भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ? और भक्ति बिना आपकी प्राप्ति (मोक्ष) कैसे होगी। प्रभो ! आप तो अपने परमप्रिय भक्तजनों के, परमहंसों के ही सर्वस्व हैं। इसलिये श्रीचरणों की सेवा कराने के लिये प्रथम मांगा हुआ दास्यभाव मुझे दीजिये ॥ ५० ॥

इसके पश्चात् श्री महाप्रभुजी अधिकार भेद द्वारा आज्ञा करते हैं कि—

ज्ञानाभावे पुष्टिमार्गीतिष्ठेत् पूजोत्सवादिसु ॥१७॥

मर्यादास्थस्तु गङ्गायां श्रीभागवततत्परः।
अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः ॥१८॥
ज्ञानाधिको भक्ति मार्ग एवं तस्मान्निरूपितः ॥१६॥

अर्थात्—ज्ञान के अभाव में पुष्टिमार्गीयभक्त पूजा तथा उत्सव आदि में तत्पर रहे। मर्यादा मार्गीय भक्त श्री गंगाजी के तीर पर निवास करके श्रीमद्भागवत पाठादि नित्यक्रिया करे। शुद्ध पुष्टि मार्ग में प्रभु का अनुग्रह ही नियामक है (यानी यह मार्ग कृपासाध्य है) इस प्रकार प्रथम कथनानुसार भक्ति मार्ग ज्ञान मार्ग से श्रेष्ठ है।

तस्मात् जीवाः पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न संशयः।
भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत् ॥१२॥

अर्थात्—पुष्टिमार्ग में जीवों की निराली रचना है। इन प्राणियों की सृष्टि केवल श्री भगवत्स्वरूपसेवा के लिये ही है अन्य उपासना के लिये नहीं।

अपने यहाँ स्वरूप सेवा शुष्क ज्ञानमार्गियों की तरह केवल क्रियात्मक ही नहीं है परन्तु स्वधर्म कर्तव्य ममता जो भगवत्स्वरूप का भावात्मक वात्सल्य है उसको पोषण करने वाली है।

प्रथम बाल भाव से ही सेवा करनी चाहिये जैसे श्री ठाकुरजी को शृङ्गार धराते समय आपके लिये दूधघर भोग समीपही रखा जाता है यह भावना बाल भाव को प्रकट करती है। क्योंकि बालक से कोई भी कार्य प्रसन्न करके ही लिया जा सकता है।

शृङ्गार समय श्री ठाकुर जी मचल न जांय। जैसे

कीर्तन—

कर मोदक माखन मिसरी ले कुमर के संग डोलत नन्दरानी।
मिसकर पकरि न्हवायो चाहत मुख बोलत मृदुवानी ॥१॥
कनकपटा आंगन धरि राख्यो उष्ण शीतल धरयो पानी।
कनक कटोरा सोंधों उबटना चंदन कांकसी आनी ॥२॥
यों लाई मंजन हित जननी चित चतुराई ठानी।
मन में मतो करत उठि भाजे दुखित केश अरुझानी ॥३॥
निरख नयनभर देखत रानी शोभा कहत न वानी।
गात सचिक्कन यों राजत है ज्यों घन तडित लपटानी ॥४॥
आओ मनमोहन मेरे ढिंग बात कहूँ एक छानी।
खिलोना एक तात जो लाये बल अजहूँ नहिं जानी ॥६॥
बैठे आय न्हाय पट पहरे आनन्द मन में आनी।
विष्णुदास गिरिधरन सयाने मात कही सोई मानी ॥७॥

अब इस कीर्तन के वात्सल्य रस में गोता लगाइये। कैसे सुन्दर रसात्मक बहाने हैं जिनके द्वारा माता अपने लाल को स्नान कराना चाहती हैं। कितना सौंदर्य कितना रस है।

इसी प्रकार श्री गुसांईजी जब परदेश पधारे तब वहां से अपने मुख्य सेवकों को लिखा कि हमारे यहाँ के प्रभु बहुत ही सुकुमार हैं। अतएव उनकी सेवा अति कुशलता पूर्वक करनी। यह पत्र राजाबाबू श्री दामोदरदासजी के यहां श्रीसामलियाजी के मन्दिर में अभी उपस्थित है।

"यशोदोत्संगललितः कचग्रथितवेणिकः।
मुक्ताफललसद्भालचलत्कुटिलकुन्तलः॥ १ श्लो० शि० २

टीका—श्री यशोदोत्संग लालित यह केवल भावात्मक स्वरूप हैं। वसुदेवजी के वहाँ जो मथुरा में प्रकटे हे सो केवल रसात्मक नाही हे सो अनेक कार्यार्थ भूमिभार हरणार्थ मोक्षदानार्थ प्रकटें हे।

और श्री यशोदाजी के यहाँ जो स्वरूप प्रकटे हे सो केवल व्रजभक्तन कों आनन्ददानार्थ हे सो श्री यशोदोत्संगलालित जो रसात्मक सोही यह श्री आचार्यजी के

पुष्टिमार्ग में सेवनीय हैं। ताहू में दोय प्रकार है कल्प कल्प में द्वापर युग आवत है तब श्री नन्दयशोदा प्रकटत हैं तब श्रीठाकुरजी हू प्रकट होत हैं सो यशोदोत्संग लालित पुष्टिमार्ग में सेव्य नाहीं है। कल्प-कल्प में कबहू अंशावतार होत है और सारस्वत कल्प में जो प्रभु स्वयं आप पधारे हैं। सो वेद की ऋचानकों वरदान दीये हैं। सो सारस्वतकल्प के यशोदोत्संगलालित यह पुष्टिमार्ग में सेव्य हैं सो श्री गुसांईजी के वचन है।

जानीत परमं तत्वं यशोदोत्संगलालितम्।
तदन्यदिति ये प्राहुरासुरांस्तानहो वुधाः॥ १॥

श्रीयशोदोत्संगलालित श्रीकृष्ण कूं परम तत्व जानने। श्रीयशोदोत्संगलालित बिना और कूँ जानें ताको आसुरी जानिये।

सर्वलीला सर्व वस्तु के कारण रूप श्रीयशोदोत्संग लालित हे तिनकों श्री यशोदाजी अति स्नेह सों गोद में लिये हैं लालन पालन करत हे परम आनन्द में मग्न हैं श्री गुसांईजी—"मंगलमिह श्रीनन्दयशोदानामसुकीर्तन-मेतद् रुचिरोत्संगसुलालितपालितरूपम्। ऐसे मंगल मंगलग्रंथ

में कहे हे। तारीतिसों श्री यशोदाजी मंगलरूपकों पायकें गोद में ले आपहूं मंगल रूप भई। ऐसे स्वरूप को ध्यान करत हे। श्री यशोदाजी उत्संग में पुत्र को लेयकें सुन्दर घूँघर वारे बार हें तिनकों समारिकें वेणी गूहत हें।

वैष्णव चिन्तातुर म्लान मुख से कभी प्रभु के सम्मुख न जाय परम कोमल श्री बालकृष्णलाल ऐसे भावों से डर जायेंगे। यह सब भावना इसीलिये हैं कि भगवत् स्वरूपमें भाव पूर्वक आसक्ति बढ़े। क्योंकि—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।
मय्येव मन आधत्स्व मयिबुद्धिं निवेशय
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न शंसयः॥

इत्यादि श्लोकों से भगवान् में स्नेहयुक्त व्यसनात्मिका भक्ति की श्रेष्ठता मानी गई है। ऐसे भक्तों को ही भगवान् मृत्युभय वाले संसार सागर से शीघ्र उद्धार करा देने का पूर्ण विश्वास श्री गीताजी में दिलाते हैं। जहाँ स्नेह है वहाँ गृहादिकों में अरुचि तथा प्रिय के सुख का प्रतिक्षण ध्यान बना ही रहता है तत्सुख की ही प्रधानता है। जैसे मंगला, शृङ्गार, ग्वाल, राजभोग,

उत्थापन, भोग, संध्या, शयन, आठ समय दर्शन होते हैं किन्तु मर्यादा की तरह घण्टों खुले नहीं रहते हैं। अपने प्राणप्रिय को श्रम न हो ऐसे सुख का विचार बना रहता है।

यद्यदिष्टतमंलोके बच्चाति प्रियमात्मनः।
तत्तन्निवेदयेन्मर्त्यं तदानन्त्याय कल्पते॥ ११ स्कं०

श्री भगवान् आज्ञा करते हैं कि जो भी उत्तमोत्तम पदार्थ हो तथा जो अपने को प्यारा लगता हो वह मेरे लिये समर्पण करे तो जीव अनन्त अलौकिक फल (मेरा स्वरूपानुभव) प्राप्त करता है॥

भगवत्सेवा में वात्सल्य विवश हो ग्रीष्म में महीन वस्त्र खसखाना, फुहारा, शीतलभोग, तथा शीत में रजाई, पर्दा, अंगीठी, और भोग में सुहागसोंठ, आदि गरमपदार्थ आते हे। इसका कारण यह है।

श्रीआचार्यचरण ने भक्ति मार्गों में से श्रेष्ठ विलक्षणता परिपूर्ण यह सेवामार्ग प्रकट किया है। इसीसे श्री गुसांईजी लिखते हैं।

श्री आचार्यजी भक्तिमार्ग निरूपण करत हैं सो भक्तनकों दूसरे मार्ग की अपेक्षा भक्तिमार्गकी विलक्षणता उत्तमता को अनुभव करावत हैं भक्तिमार्ग पूजा

मार्ग की न्यारी रीति जतावत हैं पूजामार्ग में देवता मंत्र के आधीन हैं भगवद्विभूति हैं और भक्तिमार्गमें सेव्य साक्षात् श्री पूर्णपुरुषोत्तम हैं सो भक्ति के आधीन हैं। या प्रकार सेवकन की दृढ़ता सिद्धि आप करत हैं। तथा ज्ञानमार्गीय भक्तिमार्गीय शरण को भेद कहते हैं। पृथक्‌ शरण मार्गोपदेष्टा। (श्रीसर्वोत्तमजी)

शरणमार्ग दो प्रकार को है एक पुष्टिमार्गीय एक मर्यादामार्गीय—इन्द्र ब्रज में वर्षा किये तब सब ब्रज-वासी श्री ठाकुरजी के शरण आये तब भगवान् उनको अंगीकार करि श्री गोवर्द्धनोद्धरण करिके रक्षण किये। और स्वरूपानन्द को अनुभव करवाये सो पुष्टिमार्ग है। और अर्जुन को शरण बुलायकें मुक्तिदान किये सो मर्यादा शरण मार्ग है सो श्री आचार्यजी न्यारे-न्यारे करके शरण मार्गोपदेश करवे वारे हैं तथा कारण कहत है "श्री कृष्ण हार्दवित्" अर्जुन को मुक्ति देवे को उपदेश-दियो स्वरूपानन्द को अनुभव न करायो किन्तु ब्रजवासी शरण आये तो रक्षाकर और स्वरूपानन्द को अनुभव करायो।

इसीसे श्रीगुसांईजी लिखते हैं—

उपासनादिमार्गातिमुग्धमोहनिवारकः।
भक्ति मार्गे सर्वमार्गवैलक्षण्यानुभूतिकृत् ॥ ४ ॥

श्रीआचार्य चरण ने भक्तिमार्गों में से श्रेष्ठ विलक्षणता परिपूर्ण यह सेवामार्ग प्रकट किया है।

इत्यादि वाक्यों से पुष्टि मार्ग में सेवा की प्रधानता वर्णन की है। सेवा के अङ्गभूत कीर्तन तो श्री ठाकुरजी में ओतप्रोत हैं जैसे—

(गो० श्रीरामरायजी का वाक्य)

दोहा—जो हम गावत करत हैं, सोई गिरिधरलाल।
गिरिधरलालन जो करे सो गावत तत्काल ॥ १ ॥

अतः अष्टाक्षर कीर्तन की मुख्यता कहीं भी प्रतिपादन नहीं की। श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु सबसे पीछे होने वाले आचार्यों में से हैं। श्रीनिम्बार्काचार्यने द्वैताद्वैत प्रतिपादन किया और श्रीराधागोपालजी तथा श्री राधा सर्वेश्वरजीकी सेवा स्थापन की। श्रीरामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत द्वारा श्रीलक्ष्मीनारायण की सेवा का प्रचार किया। श्रीमध्वाचार्य का द्वैतसिद्धान्त था उनके सम्प्रदाय का विकाश तथा उसे पूर्ण करने वाले श्रीकृष्णचैतन्य महा-

प्रभुजी ने श्रीगोविन्द श्रीगोपीनाथ श्रीमदनमोहनजी की सेवा तथा "महामंत्र" श्रीकृष्णनामसंकीर्तन प्रचलित किया। इन सब से प्रथम श्रीगीतगोविन्द कर्ता श्रीजगदीशावतार श्रीजयदेव महाप्रभुजी हुए। उन्होंने श्रीराधामाधव सेवा तथा नाम संकीर्तन का प्रचार करते हुए श्रीप्रियाप्रियतम के उत्कृष्ट लीला पदों का संस्कृत अष्टपदियों द्वारा गान किया। किन्तु श्रीविष्णुस्वामिसमत महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य चरण द्वारा जो "श्रीकृष्ण सेवा पद्धति" का प्रारम्भ हुआ वह अभूतपूर्व है। सभी आचार्यों के अनुयायियों ने उस पद्धति का आदर किया तथा उसे उत्कृष्ट माना। यह बात आज भी प्रत्यक्ष है कि पुष्टिमार्ग सेवामार्ग है। और सेवा के द्वारा ही भक्त पंचपर्वा अविद्या के बन्धनों से अनायास ही सरलता से मुक्त हो सकता है। ज्ञान का अवलम्बन करने वालों को अविद्या से छुटकारा कठिनता से मिलता है। श्रीगीता में कहा है कि—"बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते"। अनेक जन्मों के अनन्तर ही ज्ञानी श्रीभगवान् को प्राप्त होता है, यह क्रम मुक्ति कही है। और प्रेमलक्षणा भक्ति द्वारा सद्योमुक्ति का लाभ होता है।

श्री मद्भागवत में सेवा सम्बन्धी वाक्यों का वर्णन।

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधु पुरुषान् जहि कामतृष्णाम्
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा
"सेवा" कथारसमहो नितरां पिव त्वम् (८०)

श्री गोकर्णजी अपने पिता श्री आत्मदेवजी को वैष्णवधर्म का वर्णन करते हैं।

भगवद्भजन ही सबसे बड़ा धर्म है, निरन्तर उसीका आश्रय लिये रहें। अन्य सब प्रकार के लौकिक धर्मों से मुख मोड़ लें। सदा साधु वैष्णवों की सेवा करें। भोगों की लालसा को पास न फटकने दें तथा जल्दी से जल्दी दूसरों के गुण-दोषों का विचार छोड़कर एकमात्र भगवत्सेवारस और श्रीहरिकथासुधा का ही पान करें॥८०॥

एवं सुतोक्तिवशतोपि गृहं विहाय
यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः।
युक्तोहरेरनुदिनं परिचर्यया सौ
श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात (८१)

इस प्रकार पुत्र की वाणी से प्रभावित होकर आत्मदेवजी ने घर को छोड़ दिया और वन की यात्रा की।

यद्यपि उनकी आयु उस समय साठ वर्ष की हो चुकी थी, फिर भी बुद्धि में पूरी दृढ़ता थी। वहाँ नियम-पूर्वक श्री भागवत के दशमस्कन्ध का पाठ करते हुए अहोरात्र सेवा द्वारा भगवान् श्री कृष्णचन्द्र को प्राप्त कर लिया (८१)

यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतोमुहुः
मुकुन्दसेवया यद्वत्तथात्माद्धा न शाम्यति (३६)

प्र० स्कं० अ० ६

श्रीनारदजी श्रीव्यासजी के प्रति कहते हैं कि काम और लोभ की चोटों से बार-बार घायल हुआ मन श्री कृष्ण सेवा से जैसी प्रत्यक्ष शान्ति का अनुभव करता है, वैसी शान्ति यम नियम आदि योग मार्गों से नहीं मिल सकती है (३६)

अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते गुणानुवादश्रवणं मुरारेः।
कुतः पुनस्तच्चरणारविन्दपरागसेवारतिरात्मलब्धा (१४)

तृ० स्कं० अ० ७

श्री मैत्रेयजी बिदुरजी के प्रति कहते हैं कि श्री कृष्ण के गुणों का वर्णन एवं श्रवण, सम्पूर्ण दुःख राशि को शान्त कर देता है। फिर यदि हमारे हृदय में उनके चरण

कमल के रज की सेवा का भाव जाग पड़े तब तो कहना ही क्या है ॥ १४ ॥

तथाऽपरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम्।
त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्नतु सेवया ते (४६)

तृ० कि० अ० ६

देवता-स्तुति में प्रभु की दयालुता का वर्णन करते हैं कि कोई कथा सुनते हैं—दूसरे धीर पुरुष चित्तनिरोध रूप समाधि के बल से आपकी बलवती माया को जीतकर आपमें ही लीन तो हो जाते हैं पर उन्हें कष्ट बहुत होता है। किन्तु आपकी सेवा के मार्ग में कुछ भी कष्ट नहीं है। इसलिये "सेवा" सर्वोत्तम साध्य साधन है (४६)

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितं मलं धियः।
सद्यःक्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदाङ्गुष्ठविनिःसृता सरित्॥

३१—स्कं० ४—अ २१

श्री पृथुजी म० कहते हैं कि जिनके चरण कमलों की सेवा के लिये निरन्तर बढ़ी हुई अभिलाषा, उन्हीं के चरण नख से निकली हुई श्री गंगाजी के समान, संसार ताप से संतप्त जीवों के समस्त जन्मों के संचित मनोमल को तत्काल नष्ट कर देती है॥ ३१ ॥

"तस्मिन् वाव किल स एकलः पुलहाश्रमोपवने विविध कुसुम किशलय तुलसिकाम्बुभिः कन्दमूलफलोपहारैश्च समीहमानो भगवत आराधनं विविक्त उपरतविषयाभिलाष उपभृतोपशमः परां निर्वृतिमवाप (११) स्कं० ५–अ० ७ ॥

"तयेत्थमविरत पुरुष परिचर्यया भगवति प्रवर्द्धमानानुराग भरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्युद्भिद्यमानरोमपुलककुलक औत्कंठ्यप्रवृत्तप्रणयवाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमणारुण चरणारविन्दानुध्यानपरिचितभक्तियोगेन परिप्लुत परमाल्हाद-गम्भीर हृदयहृदावगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार (गद्य १२) स्कं० ५ अ० ७

उस पुलहाश्रम उपवन के एकान्त स्थान में अकेले ही रहकर वे अनेक प्रकार के पत्र पुष्प तुलसी दल और कन्द मूल फलादि उपहारों से भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करने लगे। इससे उनका अन्तःकरण समस्त विषयाभिलाषाओं से निवृत्त होकर शान्त हो गया और उन्हें परमानन्द प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ इस प्रकार जब वे नियम पूर्वक भगवान् की सेवा करने लगे तब उससे प्रेमका वेग बढ़ता गया— जिससे उनका हृदय द्रवीभूत होकर शान्त हो गया। आनन्द के प्रबल वेग से शरीर में रोमांच होने लगा। तथा उत्कण्ठा के कारण प्रेम के आँसू उमड़ आये, जिससे

उनकी दृष्टि रुक गयी। अन्त में जब अपने प्रियतम के अरुण चरणारविन्दों के ध्यान से उत्कृष्ट भक्ति योग का आविर्भाव हुआ, तब परमानन्द से परिपूर्ण हृदय रूप गंभीर सरोवर में बुद्धि के डूब जाने से उन्हें उस नियम पूर्वक की जाने वाली श्रीभगवत्सेवा का भी स्मरण नहीं रहा ॥ १२ ॥ इस प्रकार श्रीजडभरतजी श्रीभगवत्सेवा के नियम में ही तत्पर रहते थे ॥ १३ ॥

यथा हि स्कंधशाखानां तरोर्मूलावसेचनम्।
एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥४६॥

जैसे वृक्ष की जड़ को पानी से सींचना, उसकी बड़ी-बड़ी शाखाओं और छोटी-छोटी डालियों को भी सींचना है। वैसे ही सर्वात्मा भगवान् की सेवा सर्व देव भूत प्राणियों की और अपनी सेवा है ॥ ४६ ॥

यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय
दूर्वांकुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम्।
अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं
दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत् ॥२३॥

हे प्रभो! सच्चे हृदय से कृपणता छोड़कर आपके चरणों में जल का अर्घ्य देता है और केवल दूर्वा तथा

तुलसीदलों से आपकी सच्ची सेवा करता है, उसे भी आपकी प्राप्ति होती है। फिर बलिराजा ने तो बड़ी प्रसन्नता से धैर्य और स्थिरता पूर्वक आपके लिये त्रिलोकी का समर्पण कर दिया, फिर यह दुःखी कैसे हो सकता है (२३)

यत्सेवयाग्नेरिव रुद्ररोदनं पुमान् विजह्यान्मलमात्मनस्तमः
भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययोभूयात्स ईशः परमो गुरोर्गुरुः (४८)

जैसे अग्नि में तपाने से सोना चाँदी के मल दूर हो जाते हैं और उनका सच्चा स्वरूप निखर आता है, वैसे ही आपकी सेवा से जीव अपने अन्तःकरण का अज्ञान रूप मल त्याग देता है और अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाता है। आप सर्व शक्तिमान् अविनाशी प्रभु ही हमारे गुरुजनों के भी परमगुरु हैं ॥ ४८ ॥ यह राजा सत्यव्रत का वाक्य है ॥

रसिकसंप्रदायाचार्य श्री जयदेव महाप्रभु वंशावतंस प्रभुपाद श्री रामराय गोस्वामीजी निज सिद्धान्त का वर्णन करते हैं। (सिद्धान्त श्री आदिवाणीजी)

और कोऊ समझै सो समझो हमको इतनी समझ भली
ठाकुर श्री नन्दकिशोर हमारे ठकुरानी श्री वृषभानु लली।
सुवल आदि सव सखा श्याम के श्यामा संग ललितादि अली
व्रजपुर वास शैल वन विहरन कुञ्जन कुञ्जन रंग रली

इनके लाड चाव सुख "सेवा भाव बेल" रस फलन फली
कहैं भगवान हित श्रीरामरायप्रभु सबते इनकी कृपावली (१)

श्री जगन्नाथरायजी के भी हस्ताक्षर हैं।

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमेकोदेवोदेवकीपुत्र एव
एको मंत्रस्तस्यनामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य "सेवा" ॥

अर्थात्—श्रीकृष्ण ही देवता है श्रीगीता ही शास्त्र हैं। श्री कृष्ण नाम ही मंत्र है और श्री कृष्ण की सेवा ही एकमात्र कर्म है ॥ १ ॥

श्री गुसाँईजी ने लिखा है कि—

प्रादुर्भूतेन भूमौ व्रजपतिचरणाम्भोजसेवैकवर्त्म
प्राकट्यं यत्कृतं ते तदुत निज कृते श्रीहुताशेति मन्ये।
यस्मादस्मिन् स्थितो यत् किमपि कथमपि क्वाप्युपाहर्तुमिच्छ
त्यद्धातद्गोकुलेशः स्ववदनकमले चारुहासे करोति ॥१॥

अर्थात् हे अग्निस्वरूप श्रीवल्लभ ! आप ने प्रकट होकर श्री व्रजेन्द्रनन्दन के चरणकमल की सेवा का एक ही मार्ग प्रकट किया इसमें स्थित हुआ जीव, जो कुछ भी कभी भी कैसे भी जब आपकी कानिसे प्रभुके लिये समर्पण करता है तत्काल ही श्रीगोकुलेश प्रभु मन्द मुसक्यान भरे मुख में उस सामग्री को रख लेतें हैं।

सेवा की प्रधानता स्मरण के साथ है। जैसे—आपकी आज्ञा है कि—

"तस्मात् सर्वात्मनानित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेवं सततं स्थेयमित्येव मे मतिः॥" ६॥

इस विषय में दशदिगंतविजयी श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज आज्ञा देते हैं कि—

"एवं वदद्भिःसर्वचिन्ताराहित्यपूर्वकं सेवापरतया स्थेयम् तथा चाङ्गत्वेनैवात्र शरणोपदेशो नतु मार्गत्वेन अतो न विरोधः इत्यर्थः।

सिद्धान्त यह है कि—सेवा का अङ्ग शरणागति है शरणागति का अंग सेवा नहीं है अतः सेवा का प्राधान्य है। जैसे—"राई जैसी सेवाको फल मानत मेरु समान।"

(वचनामृत नवम)

"या मार्ग में सेवा विना कछु फल नाही है।

एक वैष्णव नित्य श्री गिरिराजजी की परिक्रमा करतो हतो, कोई दिन वाके पांव में काँटा चुभ्यो, तब ता दिन सो वैष्णव श्री नाथजी के भण्डार में आयकें बैठ्यो, गेहूं बीनवे लग्यो, तब काहूनें श्रीगोसाईंजी के आगें कह्यो जो कृपानाथ! फलानो वैष्णव श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा

करतो, सो आज श्रीजी के भंडार में गेहूं बीनत है। तब श्रीगुसांईजी ने आज्ञा करी, गेहूँ की जो एक कांकरी काढेगो तो श्रीगिरिराज की सात परिक्रमा को फल प्राप्त होयगो। श्रीगोवर्द्धन को नित्य सेवतो ताको फल आज मिल्यो। (यह श्रीवल्लभलालजी कामवनवारेन को वचनामृत है।)

अष्टाक्षर के लिये श्रीलालूभट्टजी लिख रहे हैं—

"अयं मंत्रोनेतरसाधारणः किन्तु पुष्टिमार्गीयः समर्पण गद्यवत् अतएव प्रभुचरणैरभिहितं—

अर्थात् यह मंत्र इतर मंत्रों की तरह साधारण नहीं है किन्तु पुष्टिमार्गीय है और गद्यमंत्र (ब्रह्मसम्बन्ध के सदृश-गोप्य है)

श्रीगुसांई जी कहते हैं कि—

यदुक्तं तातचरणैः श्रीकृष्णः शरणं मम
अतएवास्ति नैश्चिंत्य मैहिके पारलौकिके ॥ १ ॥

श्री आचार्यजी के उक्त "श्रीकृष्णः शरणं मम" इस मंत्र से मेरी ऐहिक पारलौकिक चिन्ता निवृत्त हो गई। ऊपर लिखी हुई पंक्तियों से स्पष्ट है कि मानसिक जप की ही उत्कृष्टता आचार्यों को सम्मत है।

इदं तेनातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योभ्यसूयति ।। श्रीगीता ।।

इस परम रहस्य को किसी काल में भी न तो तपरहित मनुष्य के प्रति कहना चाहिये। और न "वेद शास्त्र परमेश्वर गुरुजनों में श्रद्धा भक्ति रहित के प्रति ही कहना चाहिये" परन्तु जिनमें यह सब दोष नहीं है ऐसे भक्तों के प्रति प्रेमपूर्वक उत्साह सहित कहना चाहिये।

अध्याय १८ श्लोक ६७

अनधिकार चेष्टाओं का सर्वथा आग्रहपूर्वक त्याग करना चाहिये अन्यथा भगवद्भाव का तिरोधान हो जाना संभव है। परमभगवदीय मूलचंद तेलीवाला की जो नवरत्न पर व्याख्या है उसमें लिखा है कि "मंत्र कहता रहवुं अने सेवामां तत्पर रहवुं, सेवा छोडी ने मुख थी मंत्र कहता रहेवुं, एम कह्युं नथी, तेथी सेवा नी कर्तव्यता ने गौणता आवती नथी। शरणागति नी भावना ने सेवाना अंगरूपे गणीछे।"

अष्टाक्षर कहते हुए सेवामां तत्पर रहना, सेवा छोडकर मुख से कहना यह नहीं कहा है। नहीं तो सेवा गौण हो

जावेगी सो नहीं। शरणागति की भावना सेवा का अङ्ग बतलाई गई है।

इससे पुष्टि में सेवा ही मुख्य है। अष्टाक्षर का स्वतंत्र कीर्तन करना सर्वथा अनुपयुक्त है क्योंकि श्रीमद्भागवत माहात्म्य में लिखा है कि "विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे"। जो सर्वत्र जनता की भीड में सदा से होती आई है उस भगवत् कथा सप्ताह का वैष्णव दीक्षा से विहीनों को सुनने का भी अधिकार नहीं है। फिर मंत्र का सबको सुनने सुनानेका अधिकार कहाँ हो सकता है।

श्री हरिरायजी आप आज्ञा करते हैं कि—

अवैष्णवत्वं सहजं तद्विरुद्धजनेष्वपि।
जीवेषु दोषवत्स्वेवंतथातत्साम्यवस्तुषु॥ शि० ३ श्लोक १२

टीका—पुष्टि मार्ग ते विरुद्ध जो जीव हैं तिनमें तथा भगवदीयनमें दोष बुद्धि वारे जो जीव हैं तिनमें हू ऐसे अवैष्णव मानने। वैष्णव और अवैष्णव कैसें जानिये सो लक्षण कहते हैं।

जो श्री आचार्य जी ने पुष्टिमार्ग प्रकट कियो है

और श्री गुसांई जी ने प्रकाश कियो है सो नामावली में नाम कहे हैं "पुष्टिमार्ग प्रवर्तकाय नमः" श्रीमहाप्रभुजी को नाम है। और "पुष्टिमार्ग प्रकाशकाय नमः" श्रीगुसांई जी को नाम है। तासूं जो पुष्टिमार्ग के विरुद्ध आचरण करे ताकों अवैष्णव जानिये। रीति प्रमाणे चले ताकूं वैष्णव जानिये। काहेते जो शुद्ध जीव होयगो तासों शुद्ध क्रिया बनेगी, सो जीव जगत् में तीन प्रकार के हैं सो पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद ग्रन्थ में श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहे हैं।

इच्छामात्रेणमनसा प्रवाहं सृष्टवान् हरिः।
वचसा वेद मार्गं हि पुष्टिं कायेन निश्चयः॥ १॥

प्रभु इच्छा मात्रते प्रवाहकूं तथा वचन ते वेद मार्ग कूं और काया ते निश्चय पुष्टिकों उत्पन्न करत भये।

श्रीठाकुरजी इच्छा करिकें मनते सृष्टि प्रकट करी सो प्रवाही है वा सृष्टि को मन कबहूँ भगवद्धर्म में नाहीं लगे तथा दुराचरण ही करे। और वचन सों मर्यादा शृष्टि है सो वैदिक कर्म में लगी रहे है और श्रीठाकुरजी ने अपनी काया ते शृष्टि प्रकट करी है सो पुष्टि जीव हैं। उनसों भगवत्सेवा ही बने। इस प्रकार की आज्ञा और सेवा के आग्रह से शिक्षा पत्र भरा पडा है।

(अन्य-भावना)

श्री मन्महाप्रभुजी का मार्ग विरह तापक्लेशात्मक भावना द्वारा प्रभु प्राप्ति का है जैसा कि श्रीगोवर्द्धनलाल जी महाराज बम्बईवालों के ३३ वे वचनामृत में आज्ञा है श्रीमहाप्रभुजी की आज्ञा एवं आप श्रीका सुख यह वैष्णवों के लिये सर्वथा विचारणीय है। जैसे—आप श्री के चित्रजी को पधराकर २४ घंटे तक वैसे ही विराजमान रखना अथवा उनके सम्मुख ऊँचे स्वर से बोलना, क्योंकि सम्प्रदाय के श्रीमदाचार्यचरण ही गुरु हैं और गुरु के सम्मुख शिष्यवर्ग को कभी भी ऊँचे स्वर से मंत्र का उच्चारण सर्वथा निसिद्ध है और सम्प्रदाय सम्मत नहीं है। जैसे कि श्री नारदीयपुराण के वाक्यों से स्पष्ट ज्ञात होता है।

संध्ययोरूभयोर्मध्ये भोजने दन्तधावने,
पितृकार्ये च देवे च तथामूत्रपुरीषयोः
गुरूणां सन्निधौ दाने योगे चैव विशेषतः।
एषु मौनं समातिष्ठन् स्वर्गमाप्नोति मानवः॥ १॥

तथा च—यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मभिः॥ १॥

अर्थात् प्रभात और सन्ध्याकाल के जप समय में

भोजन, दन्तधावन, श्राद्धादि, देवाराधनादि तथा लघु-शंका, दीर्घशंका एवं श्रीगुरुदेवकेनिकट, दानमें और योग में मौन ही धारण करते रहना, इसीसे फलकी प्राप्ति समझनी चाहिये।

इससे देवता और श्रीगुरुदेव दोनों में यदि सादृश्य दिया जाय तो श्रीनाथजी के चित्रजी की सेवा तो प्रायः बहुत घरों में है। श्रीमहाप्रभुजी और श्रीनाथजी में केवल तुलसी समर्पण के सिवाय सभी बात समान सी हैं, क्योंकि श्रीगुसांईजी की आज्ञा है—"वस्तुतः कृष्णएव"

इसमें आपको अग्निरूप तो कहा है किन्तु वास्तव में कृष्ण हैं दूसरी जगह "प्रियागोपी भर्तुः" श्रीस्वामिनीजी का स्वरूप कहा है अतः पुष्टिस्थ श्री आचार्यजी को २४ घंटे पधराये रखना तथा उनके सम्मुख कीर्तन करते रहना स्वमर्यादा से भी विपरीत है।"

मर्यादा में भी श्रीहनुमानजी का पाठ दिन के १० बजे तक नहीं किया जाता है। क्योंकि वे श्रीरामचन्द्र जी की सेवा में रहते हैं फिर पुष्टि में कोमलता का लोप क्यों कर करना चाहिये।

अब रही आविर्भाव तिरोभाव की वार्ता, उसमें श्रीआचार्य चरण ने जगत् की सत्यता प्रतिपादन करने के लिये आविर्भाव तिरोभाव माना है। किन्तु पुष्टिस्थस्वरूप को तो नित्य ही विराजमान माना है।

जैसे—श्रीकृष्णः सच्चिदानन्दो नित्यलीलाविनोदकृत्।
(नित्य लीला नित्य नूतन श्रुति न पावे पार।)

इत्यादि वाक्यों से पुष्टि पुरुषोत्तम की लीला तिरोधान भाववाली नहीं है। और भावना जो पधराई जाती हैं वह तो नित्य ही प्रभु के निकट विराजमान रहती हैं। हम तो केवल विशेष समयों पर जैसे (छप्पन भोग श्री राधाष्टमी गंगा दशहरा पर) हमारे यहां की प्रणालिकानुसार श्रीमहाप्रभुजी की कानि से भोग झारीमाला आदि धराते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि हमलोग आविर्भाव करने के पश्चात् भावनाजी की सेवा करते हैं। किन्तु सदा समीप में विराजमान स्वरूपों को विशेष अवसरों (छप्पन भोगादि) पर माला-झारी वस्तुओं को धरा कर प्रेम विभोर हुए उत्सवों पर कृपासाध्य वैष्णवता का परिचय देते हैं। तथा तिरोभाव रूप से विसर्जन की भावना

तो हमारे मार्ग में है ही नहीं, यहां तो नित्य-नूतन लीलाओं से परिपूर्ण साक्षात् स्वरूपवान् श्रीठाकुरजी हमारे माथे पर श्रीआचार्यजी की कृपा से सदा विराजमान रहते हैं।

अन्यथा जब श्रीठाकुरजी की माला आदि को बडी कर लेंगे तो स्वरूप का तो तिरोभाव हो जायगा। फिर आज कलियुगी जीवों की इतनी सामर्थ्य कहां है जो अपने भावों द्वारा पुनः स्वरूप का आविर्भाव कर सकें।

हमारे यहाँ की पद्धति में तो जो भी प्रभु सेवा अंगीकार करते हैं, केवल श्री महाप्रभुजी की कानि से करते हैं। इसी लिये भोग धरने के पश्चात् प्रभु से विज्ञप्ति की जाती है कि आप श्री महाप्रभुजी, श्री गोसांईजी की कानि से आरोगें। अगर हमारे में ही आविर्भाव तिरो-भाव करने की शक्ति है तो विज्ञप्ति की फिर आवश्यकता ही क्या है।

जैसे—जो स्वरूप पुष्ट कर दिये जाते हैं उनके जीर्ण-शीर्ण या खंडित हो जाने पर भी सेवा वैसी ही चालू रहती है। अगर उन का तिरोभाव हो जाय जैसा कि मर्यादा

मार्ग में बहुधा खंडित मूर्त्तियों का होता है वहाँ उनकी सेवा नहीं की जाती (क्योंकि वहाँ मन्त्रों द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा तथा आवाहन विसर्जन का क्रम है)।

परन्तु उसके विरुद्ध अपने यहाँ पञ्चामृत स्नान के बाद भोग धराकर पुष्टिस्थ पुरुषोत्तम की स्थायी भावना कर ली जाती है यह परम्परा अभी तक प्रचलित है ।

और श्री आचार्यजी में पुरुषोत्तम भावना नहीं तो क्या भावना है ? यदि आचार्य भावना है तो २४ घंटों में सन्ध्यासाज क्यों नहीं ? और जो कागज के चित्र जी ही माने जायें तो भोग आरती की क्या आवश्यकता है ?

अष्ट सखाओं की वाणी वेद के समान है। अगर कीर्तन ही प्रिय है तो अष्टसखा एवं तत्कालीन भावुकों की वाणी जो बड़ों द्वारा मान्य है, उनका कीर्तन कर जिह्वा पवित्र करनी चाहिये।

पुष्टि मार्गीय वैष्णवों की गुरुभक्ति संसार में विख्यात है जिसकी समता कहीं किसी मार्ग में है ही नहीं ।

श्री महाप्रभुजी की, श्री गुसांईजी की कृपा का ही बल है जो इतने उच्चपद (भगवत्सेवा) का जीव को

अधिकार प्राप्त हुआ, किन्तु उसपर स्थिर रहना तो बड़े भाग्य की बात है।

जैसे – येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्
त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परंपदं ततः
पतन्त्यधो नादृत युष्मदंघ्रयः (गर्भस्तुतिः)

देवता स्तुति करते हैं कि हे कमललोचन! जो विमुक्त मानी हैं वे आप में अस्तभाव होने से अपवित्र बुद्धि हो जाते हैं। बड़े कष्ट से ऊँचे चढ़े हुए भी आपके श्रीचरणों के अनादर के कारन अधोमुख होकर नीचे गिर जाते हैं।

अतः सेवास्मरण के साथ दीनता परिपूर्ण रहना ही वैष्णवता है। जैसे—

तृतीय पीठाधीश्वर कांकरोली वाले श्री गिरधरलालजी महाराज के १४ वें वचनामृत—

श्री गिरिधरलालजी के १४ वे वचनामृत। आपने—आज्ञाकरी कि जो श्री भगवान और श्री गुरुदेव कों दोउन को एक रूप ही समझनो इनके विषें द्विधाभाव न

राखनो (हमारे पुष्टिसम्प्रदाय में गुरु श्री महाप्रभुजी को ही माने हैं ।) सो आगे भगवदीयनने निरूपण कर्यो है।

(छीत स्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल एई तेई तेई एई कछु न सन्देह) और श्री सूरदासजी हू गाये हैं—

"सूर कहा कह द्विविध आंधरों बिना मोल को चेरो ।"

और श्रीकृष्णदासजीने हू गायो है—

जाके मन में उग्र भरम है श्रीविट्ठल श्री. गिरिधर दोय ।
ताकों संग विषम विषहू तें भूले चतुर करो जिन कोय ॥

श्री वल्लभाख्यान में गोपालदासजी गाये हैं। रूप वेउ एक ते भिन्न थइ विस्तरे। और सगुण सनेही सामला वाला—या में हूँ दोउन को एक रूप निरूपण कियो है। ऐसे अनेक भगवदीयन ने गायो है श्री भागवत आदि बड़े २ ग्रन्थन में तथा मारग मात्र विषें श्री ठाकुरजी को तथा श्री गुरुदेव को एक ही रूप बतायो है। तासों श्री गुरुदेव हैं सोई सकल सिद्धिदायक हैं। तासों जो कोई श्री गुरुदेव के विषें द्विधा बुद्धि राखे और कैसों हू ज्ञानी होय ताकों आसुरी जाननो। ताकों संग वैष्णवन कूं न करनो तथा श्री गुरुदेव के वंश पुत्र पौत्रादिक सोउ गुरु

तुल्य हैं एक ही रूप समझनो। या बात में सन्देह नहीं राखनो तथापि सन्देह होय ताके उत्तर श्री महाप्रभुजी ने दामोदरदासजी सों पूछी जो तुम श्री गुसांईजी कों कहा करि जानत हो। तब दामोदरदासजी ने कही—

जो आपके पुत्र करि जानत हों तब दामोदर दासजी सों श्री महाप्रभुजी ने आज्ञाकरी कि जैसे हम कूं जानो तैसे इनकूं जाननो।

श्री गुसांईजी चरणामृत तथा चरण स्पर्श दामोदर दास कूं न देते सो फिर दामोदरदास बहुत आग्रह करि कें लेवे लगे, तासों गुरु, गुरु पुत्र पौत्र एक ही रूप हैं।

स्वरूप सेवा किंवा पुष्टिमार्गीय परिचर्या मार्ग का भगवत्सेवा प्रकार, कर्ममार्ग किंवा उपासना मार्ग के प्रकारों से भिन्न है। इसमें भगवान् का अनुग्रह ही नियामक है। देश काल द्रव्य कर्तृ मंत्र और प्रकार की परतंत्रता नहीं है। सबेरे छै बजे मंगला होती है और सबेरे ४ बजे भी होती है। केवल प्रभु सुख का विचार रहता है। मर्यादा मार्ग में भगवान् भक्त के सुखका विचार करते हैं और पुष्टि (अनुग्रह) मार्ग में भक्त, भगवान् के सुख का विचार करता है।

सुबोधिनी में आचार्य श्री ने आज्ञा की है कि—

ज्ञानोत्कर्षस्तदैव स्यात् स्वभावविजयो यदि।
हरेश्चरणयोः प्रीतिः स्वसर्वस्वनिवेदनात्॥
उत्कर्षश्चापि वैराग्ये हरेरपि हरिर्यदा।
भक्त्या च तादृशत्वं च सा सेवा सेवकोचिता॥

ज्ञान का उत्कर्ष कब कहा जाय जब कि अपने स्वभाव का विजय हो जाय। अर्थात् सेवा करते समय सेवक के मन में काम क्रोध लोभ आदि की लहरें आना बंद हो जावें, तब ज्ञानोत्कर्ष समझना चाहिये। प्रभु में परम प्रीति हो गई है इसका निश्चय कब होगा, जब कि अपने माने हुए स्त्री पुत्र धन गृह आदि सर्वस्व का प्रभु सेवा में ही विनियोग होता रहे। अन्यथा नहीं। यही ब्रह्म सम्बन्ध का सत्य तात्पर्य है। वैराग्य की उन्नति कब समझी जाय, जब कि श्रीहरिका भी 'हरि' हो कर सर्वदा सावधान रहे। अर्थात् जगत के दुःख हरण करने वाले प्रभु हैं किंतु सेवा करते समय भक्त को चाहिये कि उस हरि के भी सब दुःखों का दूर करनेवाला होकर सेवा में सावधान रहे। कितने ही बहिर्मुखों को यह प्रश्न होता होगा कि भगवान् को दुःख

कहाँ ? और फिर असमर्थ जीव उनके दुःखका निवारण भी क्या कर सकता है ? इनके उत्तरमें कहते हैं कि—

भक्त्या च तादृशत्वं च सा सेवासेवकोचिता।

गाढ़ प्रेम का यह स्वाभाविक धर्म है कि वहाँ पहुँच कर प्रेमी अपनी अकिञ्चित्करता को और प्रभु के महा-महिम माहात्म्य को भूल जाता है। वहाँ निखालस प्रेम-ही-प्रेम रह जाता है। इसीसे भक्ति के लक्षण में 'माहा-त्म्यज्ञानपूर्वस्तु' कहा। अर्थात् माहात्म्य ज्ञान पहली अवस्था में ही रहता है। प्रेम के चढ़ाव में वह अपने आप वह जाता है। प्रेम का यह कर्तव्य है कि 'यथा देवे तथा देहे' जैसे शीतोष्ण हमें अखरते हैं, उसी तरह प्रभु को भी श्रम पहुँचाते होंगे, यों समझ समय-समय पर प्रभु के श्रमा-पहारी उपचारों का उपयोग करता रहे बस वही भक्त हरि का भी हरि है। प्रेममय सेवकों की उचित सेवा तो बस यही है।

वैष्णवों को चाहिये कि वे अपने मार्ग की परम्परा के अनुकूल ही अपने जीवन को बितायें तथा आचार्य श्री के सिद्धान्त के अनुसार सेवा करने का मन में आग्रह रखें।

इसी में हम लोगों का कल्याण है। साथ ही अक्षर ब्रह्म या नाद ब्रह्म भी कीर्त्तन को कहा जा सकता है श्री पुरुषोत्तम से ही अक्षर ब्रह्म की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार यह आनन्द ब्रह्म का अंश है साथ ही इसे प्रभु की प्रवेशात्मक नित्यलीलामें अभेद स्थान प्राप्त है। अतः यह भी प्रभु सेवा का एक अंग है। फिर अंगी को छोड कर अर्थात् श्रीपुरुषोत्तम को छोड़ कर अक्षर ब्रह्म की उपासना वैसे ही है जैसे कल्प वृक्ष को छोड़ कर अन्य वृक्षों की उपासना है। क्यों कि पुष्टि में परम्परा गत पत्र जो भी श्रीगोस्वामि बालकों के यहां से किसी भी सेवक को लिखा जाता है। उसमें अन्त के वाक्य यही होते हैं "जैसे" सेवा में चित्त राखो हो तासूं अधिक राखोगे" और सभी उन पत्रों के प्रारम्भ में ही "श्री कृष्णः सेव्यः स्मर्तव्यश्च" इससे पुष्टि मार्ग में मुख्य धर्म स्वरूप सेवा के सिवाय दूसरा रूप देना ही भारी भूल है। पुष्टिमार्ग में श्रीगुरू भक्ति अनन्यता श्रीठाकुरजी की सेवा तथा श्रीगोवर्द्धन श्रीयमुनाजी श्रीव्रजभूमि का भाव और अपरस यह सभी वस्तु अन्यत्र इस प्रकार देखने को नहीं मिलती है किन्तु आज इस प्रकार

के उत्कृष्ट उत्तम पथ में यह विघ्न क्यों स्थान पागया है, जो रसात्मक पदार्थ अनधिकारियों को दिया जा रहा है। एक कवि की उक्ति है।

रे गंधी मतिमन्द तू अतर दिखावत काहि।
करि फुलेल को आचवन मीठो कहति सराहि॥

बस इतने में ही विज्ञजन समझ लेंगे और जो कुछ भी इस ग्रन्थ में अलेख्य लिख गया हो या अशुद्धियाँ रही हों उनके लिये सहन करेंगे, तथा सम्हाल कर पढेंगे।

सभी जाति सभी सम्प्रदाय अपने अपने धर्म में अपना हित मानते हैं। जब सभी ने श्रीकृष्ण सेवा धर्म को परात्पर माना है, फिर क्या कारण है जो इस अलौकिक छने हुए रस को छोड़ कर अन्यत्र अंग उपांगों को ग्रहण करने की चेष्टा की जाती है। हमारा इतना लिखना ही पर्याप्त है।

सम्पादकीय परिशिष्ट वक्तव्य

जिन महानुभावों की सम्मति समया भाव से प्रकाशित नहीं कर सके वे असन्तुष्ट न होंगे। अब कहना यह है कि हमने कितने नगरों में भ्रमण किया किन्तु पुष्टिमार्गीय वैष्णवों में अष्टाक्षर महामन्त्र का कीर्तन केवल कलकत्ते में ही देखा सुना है। जहां पुष्टि मार्ग के महारथी खत्री कुल कुमुद कलाधर श्री सामलियाजी मन्दिर के निर्माता राजाबाबू श्रीदामोदरदास जी का पूरा परिवार श्रीराजा० श्रीनारायणदासजी श्रीमधुबाबू श्रीकाकुबाबू श्रीजग्गूबाबू आदि नित्यसेवामें संलग्नहैं पुष्टिरत्न श्रीहीरजी भाई श्रीतुलसीदास जीवराज जी बाबू मोहनलालजी सलकिया वाले छोटेसामलियाजी वाले एवं परम भावुक श्रीनाथजी के (कलकत्ता भंडार के अवैतनिक अधिकारी श्री कल्याणदास कृष्णदासजी ठक्कर और बहिन श्रीमती कलावती देवी सर्वदा सेवामें निमग्न रहते हैं। बीकानेर वाले वैष्णवों में परमभगवदीय बाबू श्री नवलकिशोर जी डागा श्री गोविन्ददासजी डागा और उनकी माताजी श्री रामकृष्णजी सुन्दर दासजी चांदरतनजी डागा आदि बाबू श्री मानिकचन्दजी वागड़ी बाबू श्रीरतनचन्द जी दम्मानी परम भागवत श्रीनरसिंहसाह मदन गोपालजी मूंधड़ा का कुटुम्ब, श्रीजमनादासजी, श्रीगोकुलदासजी

बाबू श्री गिरिधरदास जी, भावुक रत्न बाबू, श्री ग्वालदास जी श्री हरिदास जी, श्री तुलसीदासजी मूंधड़ा, श्रीमती गौराबाईजी, श्री काशीबाई जी, एवं श्री घनश्यामदास जी, श्री सुन्दरबाई जी, माधवदासजी,श्रीमोहनीबाईजी, बाबू रामस्वरूपजी अग्रवालकी पत्नी तथा श्रीमान् दाऊदयाल जी कोठारी—श्री जड़ावबाई—श्री गोपाल-दासजी बायती श्रीराधाबाई श्रीमोहनबाई श्रीदुर्गाबाई श्रीकैयाबाई श्रीब्रजरत्न दम्मानी एवं परमभक्त श्रीमान् बाबू मूलचन्द जी, मानिकचन्द जी, मीमाणी और उनकी माता श्रीमती काकीजी तथा भगवानदास की माँ भैरोंदत्ता एवं चांदरतन की माता और श्री भक्तीबाई तथा उनके भाई मैंने इन सभी को सेवा में अनन्य तासे लगा देखा है इन सभी का भाव पाया कि नामधुन भले ही हो परन्तु अष्टाक्षर महामन्त्र का कीर्तन संप्रदाय सिद्धान्त से विरुद्ध है। मु० गोपालदास जी जतीपुरा वाले एवं पुरोहित श्रीगोवर्द्धन दास जी ने ग्रन्थों के प्रमाण दिये अष्टाक्षर कीर्तन मार्ग विरुद्ध है। हमने इस श्री बेटी जी और बालकों के विरोध शान्ति के लिये कीर्तन का प्रतिपादन भी किया किन्तु कुछ मध्यस्थों ने इस विषय को तूल दे दिया जिसका परिणाम यह सम्मति समुदाय और शास्त्र चर्चा सबके संमुख रखनी पड़ी है।

इस ग्रन्थ का संपादन हमनें क्यों किया इसका कारण प्रारंभ के दो शब्दों में देचुके हैं हमको इसमें तटस्थ होने की क्या आवश्यकता थी इसका प्रधान लक्ष है कि श्री वल्लभ कुल से हमारा प्रारंभ से ही संबंध है जिसका परिचय आगे देते हैं।

हमारे पूर्व पुरुष रसिकाचार्य श्री जयदेव महाप्रभु जी के प्रणीत श्री गीत गोविन्द का इस पुष्टि मार्ग में प्रचार करने और कराने के लिए आग्रह पूर्वक श्री आचार्य जी महाप्रभु जी को श्री जगन्नाथ राय जी ने आज्ञा प्रदान की थी जो निज वार्ता घरू वार्ता में है।

श्री आचार्य जी महाप्रभु जी को उनके जीवन में ७ आज्ञा प्रत्यक्ष रूप से हुई। १—प्रथम तो श्री विट्ठलनाथ रूप से कि आप विवाह करो और मैं आपका पुत्र बनूं २—दूसरी श्रीगोकुलनाथ रूप में कि जीवों को ब्रह्म सम्बन्ध कराकर जीवों का उद्धार करो। ३—तीसरी श्री जगन्नाथ रूप से कि पुष्टि मार्ग में श्री गीतगोविन्द का प्रचार करो। ४—श्री चैतन्य स्वरूप से कि श्री गोवर्द्धन में मेरी सेवा प्रकट करो। ५—पञ्चम श्री गङ्गा सागर में। ६—छठी मधुवन में। सातवीं काशी में। यह तीनों लीला में पधारने की आज्ञा थीं यह सभी "वार्ता" तथा आप श्री के वचनामृतो में विख्यात हैं।

जिसके कारण आज तक श्रीगीतगोविन्द की अष्टपदी श्री वल्लभ कुल के मन्दिरों में बराबर गाई जाती हैं। श्री लक्ष्मण भट्ट जी तथा श्री गुसांई श्री विट्ठलनाथ जी ने इस ग्रन्थ पर टीका भी की है जिनका नाम "वैजयन्ती" और विवृति हैं।

दूसरी बात है कि श्रीजयदेव महाप्रभु के वंश भूषण गो०श्री रामरायजी ने श्रीमत्प्रभु चरण श्रीविट्ठलनाथजी को गोकुल

में रह कर दो वर्ष विद्याध्ययन कराया जिसका प्रमाण अधिकारी श्री कृष्णदास जी (अष्टासखा) के कीर्तन में है।

कीर्तन

परम रसिक जन मंगल छाये
पुन्य अपूरव प्रकट भये श्री रामराय गोस्वामि सिधाये
महाप्रभु श्रीबल्लभसुत (श्री) विट्ठलजू को दै उपदेश सिहाये
हित हरि वंश हूंस संमत श्रीआचारज जू मित्र मिलाये
नित्यानन्द महाप्रभु पदरज शिष्य प्रसिद्ध जगतहित आये
गोकुल गांम वर्ष द्वै वसि पुनि तीरथ सन्त अनन्त बनाये
मन श्रीकृष्णदास लखि परम हंस गति बहुत समें वपुद्दगनजुड़ाये

गो० श्री रामरायजी के 'द्वादशवैष्णव की वार्ता' में दोनों के सेवक की परस्पर एकता सी ही दिखलाई है। "दो सौ बामन वैष्णवों की वार्ता" में भी प्रसंग है। श्री रामराय प्रभु के कीर्तन श्रीवल्लभ कुल के मन्दिरों में बराबर गाये जाते हैं आप की धमार तो खूब प्रसिद्ध हैं। "वार्ता में यह भी लिखा है कि आमेर के राजा (सूजा के दीवान) भगवान दास जी प्रथम श्री रामराय जी के शिष्य हुए फिर श्री गुसांई जी के हुए। लेकिन इनने कीर्त्तनों में "कहि भगवान हित रामराय प्रभु सब ते इनकी" कृपावली आदि वर्णन किया है।

पुष्टि मार्गीय अनन्य रसिक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने श्री गीतगोविन्द पर बड़ी ही भावना भरी पदावली संबद्ध टीका की है और अपने श्री वृन्दाबन दर्शन में लिखा है।

(कुण्डलिया)

जगत विदित जयदेव कवि सेवित चरन रसाल
विन्दावन विलसत अजहुँ (श्री) राधा माधव लाल
राधा माधव लाल-विहारीजी सन्निधि लखि
सेवे चन्द गुपाल रूप सुन्दर चित्रा सखि।
"रामराय" सम्बन्ध प्रेम वल्लभ कुल सब सुखि
सेवा सात्विक भाव एक दिन हों देखी चखि
मिले गुंसाई मोहि श्री वासुदेव सेवा लगत
दर्शन विन्दाविपिन फल "हरीचन्द" जेही जगत (१)

यह कुण्डलियां कई स्थान पर लिखी मिली अन्त में भारतेन्दु के मित्र श्री राधामणसेवाधिकारि विद्या वागीश गो० श्री राधाचरण जी ने दिखलाई जिसमें कोष्ठक देकर श्री व्रजकिशोर और साथ में श्री वासुदेव लिखा था, इससे दोनों ही पितापुत्र उपस्थित थे क्यों कि श्री जयदेव महाप्रभु जी की गादी का अधिकार विद्वान् होने की वजह से गो० की वासुदेवजी महाराज को ही प्राप्त हुआ।

इसी कारण कामवन के महाराज की गोकुलचन्द्र माजी वाले गो० श्री देवकीनन्दनाचार्य और गो० श्री वासुदेवजी की बड़ी मित्रता थी आपके सम्पर्क से ही अष्टटीका श्रीमद्भागवत में श्री सुबोधिनी जी का प्रकाशन हुआ, श्री वासुदेवजी को बहुत समय आप कामवन रखते थे और नित्य सत्संग चर्चा करते थे श्री वृन्दावन पधारते तव भी बराबर बुलाते थे।

मेरे जन्म के एक या दो दिन वाद ही आप श्रीवृन्दावन पधारे और श्री वासुदेव जी महा०, को बुलाया मिलते ही अधिक प्रसन्न देख आप श्री ने पूछा कि आपकी इस प्रसन्नता का कारण क्या है तव श्री वासुदेव जी ने कहा कि घर में पौत्र का जन्म हुआ है तब आप हर्षित हुए और आज्ञा करने लगे कि इसका नाम "यमुनावल्लभ" रखना पितामह ने आप श्री की आज्ञानुसार वही नाम रख दिया।

जब मैं आठ-नौ वर्ष का हुआ तो श्री बाबा जी महाराज के साथ बंशीवट की बैठक में आप श्री के दर्शन किये। पता लगने पर यही बह लड़का है मुझको अपनी गोद में बैठाल लिया और मस्तक पर श्री हस्त रखा कुछ देर बाद मैंने अपने बाबा जी के कहने पर आप श्री के चरण छुये तब हमारे श्री बाबाजी से कहा कि इसे तो हमको दे दो, आपने हंस कर कहा कि यह तो आप की ही वस्तु है आपने बड़ी कृपा की जो अवर्णनीय है इसके बाद आप श्री लीला में पधारे यह सुन कर हमारे बाबाजी महा

राज ने कई दिन तक प्रसाद नहीं लिया और कहा कि आज आचार्यत्व छिप गया, इतना अपूर्व प्रेम था।

आपकी कृपा का ही बल था जो मैंने पुष्टि के अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया अभी कुछ वर्ष हुए (बम्बई) अमरेली वाले महाराज गो० श्री पुरुषोत्तमलाल जी (दादा) के पास रहा आप तथा बाबा चि० श्रीव्रजजीवन जी, दोनों को ही अध्ययन कराया, आपके साथ पंजाब. सिंध काठियावाड गुजरात का भी खूब भ्रमण किया, आपकी प्रीति अलौकिक है। और में यही कहूँगा कि दादा तो दादा ही हैं। साक्षात् सेवा भाव की मूर्ति हैं।

इसके सिवाय सभी बालकों का तथा वैष्णवों का मेरे ऊपर परम प्रेम है इसे में अहोभाग्य मानता हूँ यही मेरा और श्रीवल्लभ कुल का संबंध है, अधिक क्या लिखूँ।

अष्टाक्षर के विषय में एक प्रकरण

आचार्य गो० श्री रामराय जी के बारह वैष्णव की वार्ता में प्रथम ही राजा भगवान दास की वार्ता के तीसरे प्रसङ्ग में लिखा है। श्री आचार्य जी महाप्रभु जी तथा श्रीमत्प्रभुचरण श्री गुसाईं जी ने अष्टाक्षर दीक्षा देने के लिये बालकों से पृथक् छै अधिकारी नियत किए थे जिनका क्रम इस प्रकार है।

आदौ गोस्वामिनीवृन्दं पुत्रीवृन्दं स्ववंशजम्।
वाराणस्यां वसन्तं श्री श्रेष्ठिनं पुरुषोत्तमम्॥ (१)

गोपालदासकृपणं गुर्जरं ब्राह्मणं क्वचित् ।
हरिवंशं च पितृव्योपाधि ख्यातं परं प्रियम् ॥ (२)
लालदासंकृपा सिद्धं गोपीनाथान्वितंद्विजम् ।
अष्टाक्षरप्रदानाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥ (३)

प्रथम ही अष्टाक्षर देने की आज्ञा श्री बहूजी को दी दूसरी श्रीबेटीजी को तीसरी काशीस्थ सेठ श्रीपुरुषोत्तम दास को चौथी श्री गोपालदास गुजराती ब्राह्मण को पांचवी चाचा श्रीहरिवंश जी को छठी श्री गोपीनाथ सेवाधिकारी श्री लाल जी महाराज को जो कृपा सिद्ध थे। इस प्रकार इन छैः को अष्टाक्षर देने का अधिकार दिया था।

यदि श्री वल्लभ कुल से पुरातन सम्बन्ध न होता तो इन छै अधिकारियों के विषय की वार्ता तथा ७ समय श्री महाप्रभु जी को प्रत्येक श्री भगवदाज्ञा यह दोनों ही प्रकरण श्री रामराय जी के १२ वैष्णव की वार्ता में क्यों लिखे होते यह संबन्ध की बात तो रही, अब यह लिखना है कि काशीस्थ अ० सौ० श्रीकृष्ण प्रिया बेटी जी ने दो ग्रन्थ प्रकाशित किये एक महिला जपयज्ञ समिति, दूसरा अष्टाक्षर महामन्त्र, इन दोनों में अप शब्दों की भर मार कर डाली है। वैष्णववृन्द विचार करें कि पुस्तकों में स्थान २ पर श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी के संकीर्तन की दुहाई दी गई है और यह ठीक भी है कि कीर्तन के वे परमाचार्य है

जैसे कि सेवा के श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु। किन्तु जब हम कीर्तन पर ही अपना सर्वस्व न्यौछावर कर चुके हैं तो उसके आचार्य की आज्ञा का भी तो आग्रह रखना चाहिये। श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रथम उपदेश है कि:—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः (१)

अर्थात् तिनके से छोटा, वृक्ष से अधिक सहनशील स्वयं अमानी दूसरे को मान देवे, तब कीर्तन का अधिकारी पात्र बनता है। श्री चैतन्य महाप्रभु जी की तितिक्षा का कुछ अंश भी अगर प्राप्त कर लिया जाय तो फिर कीर्तन का प्रचार करना कोई भी बुरी बात नहीं क्योंकि कीर्तन भी कलियुग के जीवों के लिये अभूतपूर्व औषधि है अतः हमको यह लिखना पड़ता है कि इतने उच्चकोटि के आदर्श को प्राप्त करने की चेष्टा वाले को भारी तितिक्षा ग्रहण करनी होगी, जिसके परिणाम में सर्वत्र साम्राज्य मिलेगा, संसार में विजय पताका फहराने लगेगी किन्तु उतनी सहन-शीलता जिसको "श्री चैतन्य-चरितावली में पढ़ कर पाठक भी आश्चर्य चकित हो जाते हैं जब कि श्री नित्यानन्द प्रभु के मस्तक पर मदिरा का भांड जगाई मधाई ने मारा था, उन्होंने उनके उद्धारार्थ भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुजी से प्रार्थना की थी और उनका उद्धार कराही डाला किन्तु अपने रक्त की वृष्टि से व्याकुल नहीं हुए और न उन से बदला लेने की चेष्टा ही की।

दूसरा प्रसंग श्री यवनहरिदास को कसाइयों ने मारते हुए बाजार में जाकर रक्त प्लावित तथा बेहोश कर गंगा जी में डाल दिया था चेतना आने पर हरिदास ने उनके लिये अपने प्राणवल्लभ से कल्याण कामना ही की थी इन सब बातों के जानते हुए आपकी लेखनी से इस प्रकार का अरुचि कर प्रयास कैसे हुआ। अगर सेवासे चित्त हट गया है तो कोई चिन्ता नहीं है पूर्ण दृढ़ प्रतिज्ञा होकर नाम प्रचार करिये किन्तु औषधि के साथ उसके अनुपान दैन्य त्याग और क्षमा को अवश्य लीजिये, मुझे इन उपदेशों को लिखना तो नहीं चाहिये। किन्तु विनम्र निवेदन के रूप में आपके लिये भेंट है बस इसी पर इस ग्रन्थ की समाप्ति समझ लीजिये।

श्री जयदेव जयन्ती
बसन्त पंचमी

सं० २०१२

भवदीय—
आचार्य यमुनावल्लभ गोस्वामी
श्री राधामाधव जी की हवेली
श्री जयदेव पीठ श्रीवृन्दावन

* अथ जपे गुणाः *

मनः संहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थ चिन्तनम् ।
अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्ति हेतवे ॥१३२॥ (मंत्रमहार्णवे)

भावार्थः—मनको विषयों से हटाना, पवित्र रहना, मौन-रहना, "यज्जपस्तदर्थभावनम्" पातञ्जल योग सूत्रानुसार मन्त्रार्थ एवं तदधिष्ठात्री देवता का चिन्तन करना, अव्यग्र रहना क्योंकि 'व्यग्रचित्तो हतोजपः' एवं अनिर्वेद (जाप करते करते ऊकता के जाप से न हटना) आदिक जप रूप सम्पत्ति को एकत्रित करने के साधन हैं। अर्थात् उपरोक्त गुणों के धारण करने से जप की सिद्धि होती है ॥ १३० ॥

जपान्तकाले मालान्तु पूजयित्वा सुगोपयेत् ।
गुरुं प्रकाशयेद्विद्वान् मन्त्रं नैव प्रकाशयेत् ॥३०॥(तत्रैव)

भावार्थः—जप करने के पश्चात् जपमाला को पूजन करके अच्छी तरह छुपाके रख देना चाहिये, क्योंकि विघ्नकारी ब्रह्म-राक्षसादि माला की जप शक्ति को छिद्रकाल में हरण कर लेते हैं। 'नोदाहरेद्गुरोर्नाम' इस सदाचार श्रुति का विरोध करके अपने गुरूजी का नाम प्रकाशित करदे, किन्तु मन्त्र को न प्रकाशित करे, अन्यथा बताने से मन्त्र का महत्व (शक्ति) नष्ट हो जाती है १३०

* अथ जपे-दोषाः *

अपवित्रकरो नग्नः शिरसि प्रावृतोऽपिवा ।
प्रलपन्वा जपेद् यावत्तावन्निष्फलमुच्यते ॥१३१॥(नारदपञ्च रात्रे)

भावार्थः—अपवित्र हाथ से, नग्नावस्था में, ढके मस्तक से, और बातें करते २ जप करने से वह जप नष्ट हो जाता है ॥१३१॥

ग्रन्थ विस्तारभय से श्लोकों को न देकर अब केवल भाषा में जप में के दोषों को दिखाते हैं:—

नारद पञ्चरात्र में लिखा है कि चलते चलते सोते सोते अन्य वस्तु का ध्यान करते करते, जंभाई हिचकी लेते लेते एवं वेकली युक्तचित्त से मन्त्र जाप का फल नहीं मिलता है, अतः इन सबका परित्याग यत्न पूर्वक करे, विषयिणी एवं रजस्वला स्त्री तथा शूद्र से भाषण न करे एवं रात्रि में ब्रह्ममुहुर्त को छोड़ कर मन्त्र को न जपे, व्यास स्मृति में लिखा है, कि अंगुली के अग्रभाग द्वारा जप करने से एवं बिना संख्या जप करने से जाप नष्ट हो जाता है। वैशम्पायन संहिता में लिखा है कि पुरश्चरण (अनुष्ठान) करने वाले को सब सिले वस्त्रों का त्याग कर केवल एक पहिनने तथा एक ओढ़ने का वस्त्र धारण करना चाहिये। चरण पादुका पहन, सवारी में बैठ कर, अथवा सोकर, पैर फैलाकर एवं बिना कुशादि आसन के जाप नहीं करना चाहिये।

याज्ञवल्क्य संहिता में लिखा है कि :-जप के समय जीभ

तथा ओष्ठ न चलावे मस्तक गर्दन न कम्पायमान करे, दांतों को भी न दिखावे, किसी को न कुछ दे तथा न ले एवं गुप्तभाव से मौन होकर जप करे।

यक्ष राक्षसभूतानि सिद्ध विद्याधरा गणाः।
हरन्ति प्रसभं यस्मात्तस्माद्गुप्तं समाचरेत् ॥१३२॥

॥ अथ जप दोष प्रायश्चित्तानि ॥

त्रैलोक्य संमोहन तन्त्र में लिखा है कि:—जप काल में मौन होकर बैठे चाण्डाल एवं पतित पुरुष को देखने पर आचमन करे, अथवा सूर्य दर्शन करे। बातचीत करने पर स्नान कर फिर जप करे, जप के समय मल मूत्रादि पर दृष्टि पड़ने पर आचमन कर फिर जपे। जाप करते करते यदि जप नियम भंग हो जावे तो भगवान् का ध्यान करे। जाप समय बिल्ली, बगुला, कुत्ता शूद्र, गधा, एवं बन्दर के दिखलाई पड़ने पर आचमन करके जप करे, स्पर्श होने पर स्नान करके जप समापन करे।

नारद पञ्च रात्र में लिखा है कि:—जप के समय एक बार अन्य शब्द निकलने पर ॐकार स्मरण करे, और बातचीत करने पर एक बार प्राणायाम करे, बहुतसी बातें करने पर अङ्ग-न्यास करके जप करे, एवं हिचकी तथा शरीर का न छूने योग्य स्थान छू जाने पर आचमन करके अंगन्यास कर जप करें।

प्रमादात्पतिते हस्ताच्छतमष्टोत्तरं जपेत् ॥
तत्रवन्निषिद्ध संस्पर्शे चालयित्वा यथोदितम् ॥१३३॥

भावार्थः—माला का सूत्र जीर्ण होने पर डोरा से गूँथ कर सौवार जप करे, प्रमादवश हाथ से माला छूट जाने पर १०८ वार जपे, एवं निषिद्ध स्पर्श करने पर पूर्व लिखित मन्त्र और पञ्च गव्यादि द्वारा धोकर १०८ वार जप करने से जप माला जाप के योग्य होती है। वाराह पुराण में जप यज्ञ तीन प्रकार से वर्णन किया है, तथा नृसिंह पुराण में:—ये तीनों उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं।

(१) उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित नामक स्वर, संयोग स्पष्ट, शब्दविशिष्ट-अक्षर द्वारा स्पष्ट करके मन्त्रोच्चारण को वाचिक जाप कहते हैं। किन्तु यह जाप नहीं कीर्तन है।

(१) धीरे धीरे मन्त्र उच्चारण पूर्वक तथा धीरे धीरे दोनों ओष्ठ चलायमान करके किञ्चिन्मात्र शब्द सुनने पर मन्त्रोच्चारण को उपांशु जाप कहते हैं।

(३) मन्त्र के वर्णार्थ एवं पदार्थ को बुद्धि द्वारा पुनः पुनः आवृत्ति करने का नाम मानस जाप है। दीक्षा प्राप्त मंत्र का कीर्तन नहीं करना चाहिये। परन्तु उपरोक्त विधि के अनुसार एकाग्र जप करे।

चित्र सेवा प्रसंग

चित्र सेवा में अपने सम्प्रदाय में एक मात्र श्री नाथजी के चित्र जी की सेवा प्रणाली है। साढ़े चारसौ वर्ष से हमारे घर में वैष्णवों के यहाँ से जो चित्र सेवा पधारते हैं और वैष्णव भी हमारे यहाँ से चित्र सेवा पधराले जाते हैं, यह सब श्रीनाथ जी के चित्र जी की ही होती है। अभी जो श्री महाप्रभु जी श्री गुसाई जी एवं श्रीवल्लभ कुल के चित्र जी एवं फोटो की (भोगादि सहित) सेवा होने लगी है यह सिद्धान्त एवं प्रणालिका से विरुद्ध है।

श्री महाप्रभु जी से लगाकर अब तक के किसी भी श्री वल्लभ कुल ने अपने चित्र जी सेवा के लिये किसी वैष्णव के माथे नहीं पधराये हैं। श्री गोकुलनाथ जी (चतुर्थ लाल जी) ने तो निज चित्र के सेवा करने की साफ मनाही करदी है। पादुका जी प्रसादी वस्त्र, वस्त्र पर छपे हुए चरणारविन्द "हस्ताक्षर" बैठक जी आदि की सेवा हो सकती है। परन्तु चित्र जी की तो सर्वथा नहीं, उन पादुका जी आदि में जो जिस स्वरूप में आसक्त हो उसकी भावना होती है।

पूर्ण पुरुषोत्तम का कोई आकार नहीं होता, जो जो भग-

वदीयों के हृदय में जैसी भावना वैसा वैसा ही पूर्ण श्रीत्तमपुरुषो का स्वरूप होता है।

चित्र को तो चित्रकार अपने हृदय में जैसी जैसी सूझ हो वैसा बनाते हैं। इसलिए उन चित्रकारों के चित्रित किए हुए श्री महाप्रभु जी आदि के चित्रों की सेवा कैसे हो सकती है। सन्म नुष्याकृति रूप श्री वल्लभ कुल के चित्रों में यज्ञोपवीत के भी दर्शन होते हैं। इस द्विज स्वरूप से किसी की सखडी कैसे आरोगे।

पादुका जी आदि में तो श्री वल्लभ कुल के नित्य लीला में विराजते स्वरूप की भावना है। श्री जी के चित्र में मेवाड में विराजमान स्वरूप का स्मरण है। श्रीनाथ जी प्रत्यक्ष हैं और श्री महाप्रभु जी आधि दैविक अग्नि स्वरूप से श्रीनाथ जी के मुख रूप हैं। इसलिए द्विज देहाकृति में दर्शन देने वाले श्री महाप्रभु जी के चित्रजी की अलग सेवा की जरूरत ही नहीं है।

श्री जी के श्री चित्र जी की खातरी श्रीनाथद्वारा जाकर हो सकती है। परन्तु श्री महाप्रभु जी के चित्र की खातरी कहाँ हो सकेगी। क्योंकि श्री महाप्रभुजी वर्तमान में जिस सेव्य निधि बैठक जी हस्ताक्षर प्रसादी वस्त्र ग्रन्थ आदि के रूप से हो प्रत्यक्ष में ही दर्शन देते हैं, इसलिए श्रीनाथ जी के चित्रजी की सेवा करनी चाहिए यही सिद्धान्त है।

श्रीद्वारकेश जी भावना में लिखते हैं कि सेव्य निधि सातौ स्वरूप और स्मरणीय श्रीनाथ जी—जिस घर के जो सेवक हों उनको उसी घर की प्रणाली के अनुसार सेवा करनी चाहिये। परन्तु स्मरण तो श्रीजी का ही करना।

अपने माथे विराजती हुई स्वरूप सेवा (चित्रादि सेवा) में भी भावना श्रीजी की ही करनी चाहिये और श्रीजी के मुखारविन्दरूप श्रीमहाप्रभुजी हैं इसलिये श्री महाप्रभु जी किंवा आप श्री के अंगरूप श्रीवल्लभकुल के चित्रजी की सेवा की प्रणालिका पहिले से है ही नहीं, आधुनिक नूतन प्रकार आरम्भ हुआ है। उसको हमने कभी भी पोषण नही दिया है। और पोषण देंगे भी नहीं।

सम्प्रदाय के सिद्धान्त एवं प्रणालिका को सब लोग समझें तो द्विज देहाकृति में दर्शन देते हुये चित्र की सेवा देखादेखी से वहुत लोग कर रहे हैं। वह कदापि वैसा न करें। "नित्यलीलास्थ गो० श्री१०८ श्रीरणछोडलाल जी महा० राजनगर के वचनामृत। सम्पादक वसन्तराम हरिकृष्ण शास्त्री वचनामृत ३६ पृ० ५७-५८ गुर्जरगिरा से अनुदित।

७/१ सुखलाल जौंहरीलेन
वांसतल्ला ष्ट्रीट
कलकत्ता

हिन्दी अनुवाद कर्ता
विद्यारत्न कन्हैयालाल कोटेचा

श्री अष्टाक्षर जी, अष्टधा अर्थात् पंचतत्व और तीनों प्रकृति युक्त हैं अक्षररूपात्मक है "नामरूप है" गुरुदेव कृपा सूँ सरलता से प्राप्त है।तासे गोप्य है।

श्री पंचाक्षर जी, केवल पंच प्राण प्रकट है प्रकृति अन्तर विलास है "रस केवल कृपा सूँ प्राप्त है" श्री गुरुदेव द्वारा अपने प्राणेश को आत्म निवेदन रुप है। ऐसी भावना है ताते गोप्य है।

जो अपने जन हैं उनके लिये ही हमारे परम पुरुष श्री वल्लभ प्रभु ने निज प्राणेश की आज्ञा सूँ प्रकट कियो है जिनको यह मंत्र अपने गुरुदेव से प्राप्त हुआ है और इसके मूल्य में यदि उननें अपना अनमोल मन अपने गुरुदेव को अर्पण किया है। तो वह इस अनमोल मंत्र को अपने मुखद्वार से प्रकट होने ही नहीं देगा "क्योंकि यह अष्टाक्षर मंत्र पंचाक्षर युक्त है"

इसकी भावना से ही अंतर विलास है "हमारे श्री आचार्य चरण नें कितनें ही वैष्णवों को केवल नाम मंत्र द्वारा ही निवेदन फल की कृपा की हैं" अतएव यह नाममंत्र कितना विलक्षण है।

केवल मंत्र ही तो सम्प्रदाय का तत्व है मन्त्र की भावना से ही हमारी सेवा प्रणाली है "यदि हम मन्त्र बल से ही प्रचार कार्य करें फिर भी प्रचार यथोचित न होवे तोफिर इसके ऊपर पराशक्ति कोई भी हमारे पास नहीं हैं। प्रचार तो सैम्पुल की चीजों से ही होता है, मूल से नहीं।

ता० ६-२-५६

रामकृष्णदास मुकटवाला
बनारस

दासानुदास गोरधन दास त्रीकम दास

श्यामघाट, मथुरा की विनति

अष्टाक्षर महा मन्त्र को जप सतत् और गोप्य करनो ऐसी श्री महाप्रभु जी, श्री गुसांईं जी, श्री हरिराय जी, श्री पुरुषोत्तमजी महाराज श्री प्रभृति स्वरूपन ने ग्रन्थन द्वारा आज्ञा करी हैं यह तो प्रसिद्ध है, याही भाति प्राचीन तथा अर्वाचीन गोस्वामि बालकन के दर्शन भये हैं और होय हैं उच्चार सुनिवे में नहिं आयो।

जप गोप्य करवे में कुछ महत्व है पर यह तो निश्चय भयो ही, यदि यासूं विपरीत जप करें तो अवश्य कुछ हानि होय। श्री हरिराय जी महाप्रभु एक पद में आज्ञा करें हैं कि—

मोहन को स्मरण कीजे मन में।
बाहर प्रगट किये ते गिरधर, धर्म जाय एक छिन में ॥ १
भूख्यो रहे घास फल खावे, आहार करे जल घन में।
"रसिक" जो सुख निज चोवारे, सो सुख नहीं त्रिभुवनमें ॥२

या पद में गोप्य स्मरण न करवेसुं धर्म हानि होय ये निश्चयभयो।

प्राणान्त पर्यन्त धर्म हानि न सहनी ऐसी आज्ञा हू है और भगवद् भक्तन के चरित्र में हूँ प्रसिद्ध है तो अपन आज्ञा के विपरीत श्री महाप्रभु जी के मार्ग में कोन भांति रह सके है ? लौकिक में हू प्रचलित है कि जा राज्य में रहे वा राज्य के नियमानुसार ही वहां स्थिति होय सके है। अन्यथा देश पार करदें तो अपन श्री महाप्रभु जी के मार्ग में स्थिति चाहें तो आप श्री की आज्ञा और नियम यथावत् पालन करने ही पड़ेंगे। तासूं समस्त पुष्टिमार्ग वैष्णवन कूँ सदैन्य विनति है कि अष्टाक्षर महामन्त्र को जप सतत् करनो और गोप्य (मन में) करनो और प्राचीन ग्रन्थन को अवलोकन करनो तासूं अन्यथा बुद्धि न होय।

अपने पूर्वज चौरासी, दो सौ बावन वैष्णवन के अलौकिक धर्म सेवा स्मरण आदि मुख्य हते और सेवा स्मरणादि सूं अवकाश मिलते बे लौकिक कार्य व्यवहारादि प्रवृत्ति करते तासूं अन्यथा बुद्धि न होती तब अपन यासूं विपरीत क्रम राखे हैं जासूं अन्यथा बुद्धि होनों सम्भव है। तासुँ प्राचीन रीत्यानुसार सेवा स्मरणादि, प्राचीन ग्रन्थन को अवलोकन भगवत् भक्तन कौ सत्संग अवश्य करनो तासूं सम्प्रदाय के सिद्धान्त के विरुद्ध इच्छा मात्र हू न होय।

ता० १०-१-५६

* अथ दशनामापराधाः (पद्मपुराणे)

सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते ।
यतः ख्यातिं यातं कथमु सहते तद्विगरिहाम् ॥२२१॥
शिवस्य श्री विष्णोर्य इह गुणनामादि सकलम् ।
धियाभिन्नं पश्येत्सखलु हरिनामाऽहितकरः ॥२२२॥
गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्र निन्दनं तथार्थवादो हरिनाम्नि कल्पनम् ।
नाम्नो बलाद्यस्य हि पापबुद्धिर्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः।२२३।
धर्मव्रत त्यागहुतादि सर्व शुभक्रिया साम्यमपिप्रमादः ।
अश्रद्दधानेविमुखेऽप्य शृणवति यश्चोपदेशो हरिनामापराधः।२२४
श्रुतेऽपि नाममाहात्म्ये यः प्रीतिरहितो नरः ।
अहं ममादि परमो नाम्निसोऽप्यपराधकृत् ॥२२५॥
जाते नामापराधेऽपि प्रमादेन कथञ्चन ।
सदा सङ्कीर्त्त यन्नाम तदेकशरणो भवेत् ॥२२६॥

भवार्थ—वैष्णवों की निन्दा करना नाम के प्रति घोर अपराध है, क्योंकि साधुजनों के द्वारा ही प्रगट किया हुआ नाम साधुजनों की निन्दा को सहन नहीं कर सकता है। अब यहाँ पर शङ्का होती है कि यदि नाम प्रचारक साधु में कोई निन्दा की

बात हो तो करी ही जावेगी, सत्य है, उसको एकान्त में समझाना चाहिये, पीछे दूसरों से बुराई करना निन्दा है, गुण एवं अवगुण अनादि प्रकृतिवद्ध होने से सभी में होते हैं, गुणों को ग्रहण करना चाहिये अवगुणों को त्यागना चाहिये। जैसे भगवान् गुणग्राही होते हैं, ऐसे ही उनके भक्तों को होना चाहिये। फिर शङ्का होती है कि जब हमें अवगुण साधु में दीख रहे हैं, तो दोष दृष्टि तो आती ही है, मनको किस प्रकार उनके प्रति भाव ग्राही बनावें-इसके उत्तर में श्रीराधाकुण्ड के प्रगट करने वाले गो० श्री रघुनाथ-दास जी ने कैसा सुन्दर समझाया है कि:—

दृष्टैः स्वभावजनितैर्वपुषश्च दोषैर्नप्राकृतत्वमिह भक्त-जनस्य पश्येत् । गङ्गाम्भसो न खलु बुद्बुदफेन पङ्कैर्ब्रह्म-द्रवत्वमपगच्छति नीरधर्मैः ॥ २२७ ॥

भावार्थः—जल के विकृत (अवगुणस्वरूप) धर्म-बुदबुद, फेन, एवं पङ्क (कीच) आदिक गङ्गाजी के पापहारी जल में विद्यमान होने पर भी, श्री गंगाजी के जल की ब्रह्मद्रवत्व अर्थात् नित्य पवित्रता जैसे नष्ट नहीं होती है, तैसे ही भक्त के देह के स्वभाव जनित दोषों को देख कर, उनमें प्राकृत (देह) बुद्धि नहीं करनी चाहिये वे तो नित्य पवित्र हैं। फिर शङ्का होती है कि जब पवित्र हैंतो अवगुण क्यों-वे तो होने ही नहीं चाहिये चाहे गंगाजी हों भले साधू हों, इसके उत्तर में श्री भक्तमाल में बड़ा अच्छा दृष्टान्त दिया है कि जैसे जब बालक अति सुन्दर होता

है तो स्नेहवती माता बालक के गौरवर्ण चन्द्रमा के समान मुख पर काजल का नजर को दूर करने के वास्ते एक बे ढंग का मस्तक पर का टिपुका लगा देती है. कि बच्चे को नजर न लग जावे। ऐसे ही भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्त में एक आदिक अवगुण छोड़ देते हैं, कि इसकी भक्ति को नजर न लग जावे, तथा अभिमान न हो जावे। यह सब भगवन् का ही खेल समझना चाहिये। अन्यथा अर्जुन के प्रति श्रीगीताजी में "कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति" तथा "नहि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति," ये भक्त वात्सल्यमय बचन न कहते।

(२) श्री शिवजी एवं भगवान् के नामों में एवं गुणों में भेद श्री हरिनाम के प्रति घोर अपराध है, क्योंकि शिवजी भगवान् के भक्तों में अन्तरङ्ग एवं अग्रगण्य हैं, जिन्होंने सती जैसी स्त्री को केवल सीताजी का रूप बना लेने पर त्याग दिया था, तथा जगत् को नाश करने वाले प्रभु की आज्ञा से एवं उनके नाम के महत्व को प्रगट करने के लिये घोर हलाहल को पान कर गये थे।

(३) साक्षात् हरि के रूप ज्ञानदीषक देने वाले गुरु की अवज्ञा करना कि गुरु बनाने से क्यां होता है, वैसे ही भजन कर लेंगे यह तीसरा अपराध है।

(४) नाम महिमा, प्रतिपादक, वेदादिक शास्त्र की निन्दा करने से कि ये तो पण्डितों ने अंटसंट अपने स्वार्थानुसार बना

दिये हैं भजन करना चाहिये, इनकी सदाचारयुक्त बातोंको मानो न मानो यह नाम के प्रति चौथा अपराध है।

(५) शास्त्र के द्वारा भगवन्नाम की महिमा को सुन कर केवल स्तुति मात्र कल्पना करके कि कहीं नाम में इतना महत्व हो सकता है, यह पाँचवा अपराध हैं।

(६) जब भगवान् का नाम पापों को नाश करता है तो खूबपाप करें, नाम जपते ही पाप नाश हो ही जावेंगे ऐसे बुद्धि बल के द्वारा पाप जो करता है, वह सदा ही नरकों में डाला जाता है, हाँ भूल से यदि विकर्म (पाप) बन जावे तो आयन्दा के लिये दृढ़ प्रतिज्ञा करके कि फिर पाप न करेंगे, ऐसी अवस्था में तो नाम, पापों का नाश करता है।

(७) कलियुग में युगधर्मानुसार केवल भगवन्नाम को श्रेष्ठ साधन शास्त्रों में श्रवण करके भी जो, लौकिक धर्म, कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रत, द्रव्यादिदान एवं यज्ञादि शुभ कर्मों को नाम के समान तुलना देता है, यह भी नाम के प्रति सातवाँ अपराध है। वास्तव में लोक में देखा जाता है कि मरने के पश्चात् "राम नाम सत्य है, ऐसा सब कहते हैं, धर्म सत्य है दान सत्य है इत्यादि कोई भी कहते नहीं सुना, यद्यपि गीता अ० १८/५ में "यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् । यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् । अर्थात् यज्ञादि नही त्यागने चाहिये, ये मनुष्यों को पवित्र करने

वाले हैं, ऐसा कहा है परन्तु आगे के छठवें श्लोक में 'सङ्ग त्यक्त्वा फलासक्ति को त्याग के यज्ञादि, करने से पवित्र करेंगे, ऐसा कहा है सो जीव मे स्वतन्त्रभाव से फल त्यागना कलियुग में कठिन है, अतः कलियुग में परमपवित्र करने वाला नाम के बराबर कोई साधन नहीं है।

(८) जो अन्यासक्त बुद्धि होने से भगवान् से विमुख है, तथा नाम में श्रद्धा रहित है, उसको नाम का उपदेश अर्थात् भगवन्नाम मन्त्र का उपदेश (दीक्षा मन्त्र) बलात्कार लोभादि वशात् देना यह अपराध है। क्योंकि वह तो जपेगा नहीं, और मन्त्र त्यागने से उसको अपराध लगेगा, तो दूसरे को अपराधी बनाना भी, अपराध ही तो हुआ। इसलिये नाम प्रचारकों को विना इच्छा एवं श्रद्धा के किसी को मन्त्रोपदेश नहीं देना चाहिये।

(९) जो व्यक्ति नाम को सर्वश्रेष्ठ रूप से वरण करके तथा सबको नश्वर समझ कर पुनः मैं एवं यह मेरा, इस क्षुद्र बुद्धि से विषय भोगादि में तात्पर्य नामामृत को ग्रहण कर पुनः विष रूप विषय का पान करता है, यह नाम के प्रति नवम अपराध है।

प्रश्न—आज कल तो बड़े बड़े भक्त हमने नाम का जाप करते हुये विषयरस में संलग्न देखे जारहे हैं, तो क्या ये सभी अपराधी हैं हाँ—जब तक विषयों से अरुचि न हो, अपराधी ही मानना चाहिये,

तात्पर्य जो भगवन्नाममामृत के रसास्वादन में निमग्न हो जाते हैं। उनको विषय तो विष्ठा के समान प्रतीत होते हैं, और